

# वैराग्य पाठ संग्रह

प्रकाशक

श्री महावीर दिगम्बर जैन परमागम मन्दिर ट्रस्ट  
भिण्ड (म.प्र.)

॥ श्रीनेमिनाथाय नमः ॥



# वैराग्य पाठ संग्रह

संकलनकर्ता

पं. श्री अनिल कुमार शास्त्री, भिण्ड

प्रवक्षक

श्री महावीर दिगम्बर जैन परमागम ट्रस्ट  
भिण्ड (म.प्र.)

आवृत्ति - 1000 प्रतियाँ

दिनांक - 22 जुलाई 2007, (अष्टाहिका महापर्व के अवसर पर)

प्राप्तिस्थान - श्री दिगम्बर जैन महावीर परमागम मन्दिर

महावीर चौक, भिण्ड (म.प्र.) 477001

Pages on USC...  
to copy. Thank Rajesh

लेजर टाइप सेटिंग एवं मुद्रण व्यवस्था

**संयम पब्लिशर्स एण्ड प्रिन्टर्स**

6/17, आर्य नगर, भिण्ड (म.प्र.)

मो. : 98262-87833

## Thanks & Our Request

This shastra has been donated by Shree 1008 Neminath Digamber Jain Mandir, Shikohabad, UP, India who have donated it to be "electronised" and made available on the internet.

Our request to you:

1) Great care has been taken to ensure this electronic version of [Vairagya Path Sangrah \(Hindi\)](#) is a faithful copy of the paper version. However if you find any errors please inform us on [rajesh@AtmaDharma.com](mailto:rajesh@AtmaDharma.com) so that we can make this beautiful work even more accurate.

2) Keep checking the version number of the on-line shastra so that if corrections have been made you can replace your copy with the corrected one.

## Version History

Version Number	Date	Changes
001	16 July 2011	First electronic version

## दो शब्द

स्वाध्याय के बिना सुखी होना तो दूर सुखी होने का सही उपाय भी समझ में नहीं आता। भक्ति में आत्मनिवेदन की प्रधानता है परन्तु भगवान के द्वारा बताया धर्मतीर्थ प्राप्त करने का प्रथम सोपान स्वाध्याय ही है। जैसे भौतिक शरीर के लिए भोजन आवश्यक है वैसे ही आत्मार्थ साधने के लिए स्वाध्याय।

अतः हमें स्वाध्याय अवश्य ही करना चाहिए।

पाठ करना और याद करना भी आमनाय नामक स्वाध्याय ही है। आँखें और कान पराधीन हैं। शास्त्र पढ़ना या सुनना हरसमय सम्भव नहीं है। अतः पाठों को याद करके इनके माध्यम से तत्त्वाभ्यास करें और अपने उपयोग को निर्मल रखने का सतत प्रयत्न करते रहें। इसी उद्देश्य से आध्यात्मिक ज्ञान एवं वैराग्य गर्भित पाठों का यह लघु संकलन प्रकाशित करते हुए यही भावना है कि हम सभी इसका अधिकाधिक सदुपयोग करते हुए सुख शान्ति के मार्ग में अग्रसर हों।

बहुत समय से पं. श्री अनिल जी शास्त्री की भावना रही कि प्राचीन एवं बा.ब्र.श्री रवीन्द्र जी 'आत्मन्' द्वारा विरचित नवीन अध्यात्म पाठों का एक ऐसा लघु संकलन प्रकाशित किया जाए जिससे व्यक्तिगत एवं सामूहिक दैनिक स्वाध्याय में भी पाठ करने में सुविधा रहे। एतदर्थ यह लघु संकलन प्रस्तुत है। संकलन के शुद्धीकरण में डॉ. श्री वीरसागर जैन का अपूर्व सहयोग प्राप्त हुआ। प्रकाशन का आर्थिक व्यय श्री वीरसेन जी सराफ के द्वारा प्राप्त हुआ। संकलन के टंकण एवं मुद्रण कार्य में संयम पब्लिशर्स एण्ड प्रिन्टर्स का सहयोग प्राप्त हुआ। ट्रस्ट सभी का हृदय से आभार व्यक्त करता है।

पं. महेन्द्र कुमार शास्त्री

मंत्री

श्री महावीर दिगम्बर जैन परमागम ट्रस्ट

भिण्ड(म.प्र.)

## विषयानुक्रमिका

क्र.	विषय	रचयिता	पृष्ठ संख्या
१.	झण्डा गायन	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	१
२.	श्री नेमिनाथ स्तुति	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	२
३.	नवदेव भक्ति	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	२
४.	वीरशासनदशक	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	३
५.	निर्ग्रन्थ स्तवन	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	४
६.	अपना स्वरूप	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	६
७.	परमार्थ-शरण	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	७
८.	मेरा सहज जीवन	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	८
९.	मंगल शृंगार	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	९
१०.	सांत्वनाष्टक	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	१०
११.	समता षोडशी	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	११
१२.	ज्ञानाष्टक	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	१२
१३.	ब्रह्मचर्य द्वादशी	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	१४
१४.	निर्ग्रन्थ भावना	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	१५
१५.	आलोचना पाठ	कविवर जौहरी लाल जी	१६
१६.	भावना बत्तीसी(अनुवाद)	बाबू जुगल किशोर जी	१९
१७.	मेरी भावना	पं. जुगल किशोर जी मुख्तार	२१
१८.	वैराग्य भावना	कविवर भूधरदास जी	२३
१९.	अमूल्य तत्त्वविचार(अनुवाद)	बाबू जुगलकिशोर जी	२५
२०.	छह सामान्य गुण	ब्र. श्री गुलाबचन्द्र जी	२६
२१.	परमार्थ विंशतिका	अज्ञात	२७
२२.	आत्म संबोधन	अज्ञात	३०
२३.	वैराग्य पच्चीसिका	भैया भगवतीदास जी	३४
२४.	बारह भावना	कविवर बुधजन जी	३६
२५.	बारह भावना	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	३८
२६.	बाईस परीषह	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	४०
२७.	अपूर्व अवसर(अनुवाद)	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	४३
२८.	षोडशकारण विंशतिका	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	४५
२९.	दशधर्म द्वादशी	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	४८
३०.	जिनमार्ग	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	४९
३१.	आत्मभावना	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	५१
३२.	नारी स्वरूप	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	५३
३३.	ब्रह्मचर्य विंशतिका	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	५४
३४.	चेतो-चेतो आराधना में	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	५६
३५.	अपनी वैभव गाथा	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	५७
३५.	सेठ-सुदर्शन गाथा	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	५९
३६.	वैराग्य द्वादशी	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	६३
३७.	प्रभावना	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	६४
३८.	स्वाधीन-मार्ग	ब्र. श्री रवीन्द्र जी	६६

## झण्डागायन

धर्मध्वजा है मंगलरूप ।  
 धर्मध्वजा है आनन्दरूप ॥  
 आओ सब मिलकर लहरायें ।  
 भक्तिभाव से शीश नवायें ।।टेक ॥  
 पंच परमेष्ठी इष्ट हमारे,  
 जिनमंदिर प्राणों से प्यारे ।  
 श्री जिनबिम्ब अहो मनहारी,  
 जिनवाणी है मात हमारी ।  
 जैनधर्म है मंगलरूप,  
 लोकोत्तम है शरणस्वरूप ॥ धर्म.....  
 सभी आत्मा सिद्ध समान,  
 मैत्री भाव रहे सुखखान ।  
 मूलधर्म का भेद-विज्ञान,  
 धर्म है निर्मल आत्म ध्यान ।  
 दशलक्षण सबको सुखरूप ।  
 रत्नत्रय शिवमार्ग अनूप ॥२ ॥ धर्म.....  
 मंगल अवसर आज सु आया,  
 श्री जिनवर का शासन पाया ।  
 हम सब करें आत्मकल्याण,  
 भव सन्तति का हो अवसान ॥  
 अहो अनुभवं मुक्तस्वरूप,  
 चिदानन्द चैतन्य स्वरूप ॥ धर्म.....  
 त्यागें दुखमय भाव विकारी,  
 समताभाव रहे सुखकारी ।  
 ज्ञान-सिन्धु में नित्य नहायें,  
 सब ही मिल आनन्द मनायें ।  
 प्रगटायें निर्ग्रन्थ-स्वरूप,  
 फिर हो जावें सिद्धस्वरूप ॥ धर्म.....

## श्री नेमिनाथ स्तुति

अहो नेमिस्वामी त्रिभुवन नामी,  
 भक्ति से चरणों में वंदन करूँ मैं।  
 वंदन करूँ अभिनन्दन करूँ मैं ॥टेक॥  
 मिटे मोह स्वामी तिहारे दरश से।  
 नशे क्लेशमय काम प्रभु के परश से ॥  
 निर्मोह निष्काम वंदन करूँ मैं ॥ वंदन ..... ॥१॥  
 साक्षी में जिनवर जगे ज्ञान निर्मल,  
 जितेन्द्रिय हो परिणति निर्द्वन्द्व निर्मद।  
 वीतराग सर्वज्ञ वंदन करूँ मैं ॥ वंदन ..... ॥२॥  
 दर्पण के सन्मुख जड़रूप दिखता,  
 प्रभुवर के सन्मुख चिद्रूप दिखता।  
 सहज लखते चिद्रूप वंदन करूँ मैं ॥ वंदन ..... ॥३॥  
 जग के प्रपंचों से परिणति थकी है।  
 वैराग्य भावना मन में जगी है।  
 निर्ग्रन्थ होकर वंदन करूँ मैं ॥ वंदन ..... ॥४॥  
 ध्याऊँ सहज प्रभु सहज ही जिनेश्वर।  
 चैतन्य में ही रहूँ नित महेश्वर ॥  
 परम शान्त अद्वैत वंदन करूँ मैं ॥ वंदन ..... ॥५॥

## नवदेवभक्ति

द्रव्य नमन हो भाव नमन, मन-वच-काया से करूँ नमन।  
 मन-वच-काया से करूँ नमन ॥टेक॥  
 तीर्थप्रणेता श्री तीर्थकर, वीतराग सर्वज्ञ हितंकर।  
 अरहंतों को करूँ नमन, मन-वच-काया से करूँ नमन ॥१॥  
 सर्व कर्म मल से वर्जित प्रभु, ज्ञान-शरीरी अशरीरी विभु।  
 सिद्ध प्रभु को करूँ नमन, मन-वच-काया से करूँ नमन ॥२॥



पंचाचार परायण ज्ञायक, साधु संघ के सुखमय नायक ।  
 आचार्यों को करूँ नमन, मन-वच-काया से करूँ नमन ॥३ ॥  
 शास्त्र पढ़ाने के अधिकारी, तत्त्वज्ञान देते अविकारी ।  
 उपाध्याय को करूँ नमन, मन-वच-काया से करूँ नमन ॥४ ॥  
 निजस्वभाव के उत्तम साधक, रत्नत्रय के जो हैं धारक ।  
 निर्ग्रन्थों को करूँ नमन, मन-वच-काया से करूँ नमन ॥५ ॥  
 समवसरण-सम श्री जिनमन्दिर, जिन-सम जिनप्रतिमा है सुन्दर ।  
 भक्तिभाव से करूँ नमन, मन-वच-काया से करूँ नमन ॥६ ॥  
 तरण-तारणी श्री जिनवाणी, पढ़ें-पढ़ावें नित ही ज्ञानी ।  
 हर्षित होकर करूँ नमन, मन-वच-काया से करूँ नमन ॥७ ॥  
 अनेकांतमय शाश्वत दर्शन, धर्म अहिंसामयी आचरण ।  
 जैनधर्म को करूँ नमन, मन-वच-काया से करूँ नमन ॥८ ॥  
 इनसे सम्बन्धित सुखकारी, धर्म आयतन मंगलकारी ।  
 यथायोग्य मैं करूँ नमन, मन-वच-काया से करूँ नमन ॥९ ॥

### वीरशासनदशक

वीरनाथ का मंगल शासन, जग में नित जयवंत रहे ।  
 स्वानुभूतिमय श्री जिनशासन, जग में नित जयवंत रहे ॥१० ॥  
 श्री जिनशासन के आधार, भवसागर से तारणहार ।  
 वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर, जग में नित जयवंत रहें ॥११ ॥  
 वस्तुस्वरूप दिखावनहार, हेयाहेय बतावनहार ।  
 नित्यबोधिनी माँ जिनवाणी, जग में नित जयवंत रहे ॥१२ ॥  
 मुक्तिमार्ग विस्तारनहार, धर्ममूर्ति जीवन अविकार ।  
 रत्नत्रय धारक मुनिराज, जग में नित जयवंत रहें ॥१३ ॥  
 चैत्य-चैत्यालय मंगलकार, धर्म संस्कृति के आधार ।  
 सहज शान्तिमय धर्मतीर्थ सब, जग में नित जयवंत रहें ॥१४ ॥

देव-गुरु की मंगल अर्चा, आनंदमयी धर्म की चर्चा ।  
 स्याद्वादमय ध्वजा हमारी, जग में नित जयवंत रहे ॥५ ॥  
 अष्ट अंगमय सम्यग्दर्शन, अनेकांतमय जीवन दर्शन ।  
 सहज अहिंसामयी आचरण, जग में नित जयवंत रहे ॥६ ॥  
 रहें सहज ही ज्ञाता-दृष्टा, हो विवेकमय निर्मल चेष्टा ।  
 वीतराग-विज्ञान परिणति, जग में नित जयवंत रहे ॥७ ॥  
 तत्त्वज्ञान को सब ही पावें, मुक्तिमार्ग सब ही प्रगटावें ।  
 सुखी रहें सब जीव भावना, जग में नित जयवंत रहे ॥८ ॥  
 जिनशासन है प्राण हमारा, मंगलोत्तम शरण सहारा ।  
 नमन सहज अविकारी सुखमय, जग में नित जयवंत रहे ॥९ ॥  
 सेवें जिनशासन सुखकारी, शान बढ़ावें मंगलकारी ।  
 सत्यपन्थ निर्ग्रन्थ दिगम्बर, जग में नित जयवंत रहे ॥१० ॥

### निर्ग्रन्थभाव स्तवन

(दोहा)

पर से अति निरपेक्ष है, प्रभुता अपरम्पार ।  
 अहो अकिंचन नाथ को, वंदन अगणित बार ॥

(रोला)

तजा अनादि मोह सजा निजपद अविकारी,  
 समयसारमय हुए सहज चैतन्य विहारी ।  
 परम इष्ट ज्ञायक स्वभाव में तृप्त हुए थे,  
 वीतराग-विज्ञानरूप परिणमित हुए थे ॥१ ॥  
 कुछ अनिष्ट नहीं दिखा कल्पना मिथ्या छूटी,  
 क्रोध भाव की संतति भी फिर सहजहि टूटी ।  
 हीनाधिक नहीं दिखें सभी भगवान दिखावें,  
 अरे मान के भाव सहज ही नहीं उपजावें ॥२ ॥

पूर्ण सिद्ध सम आतम जब दृष्टि में आया,  
 गुप्त पापमय माया का तब भाव नशाया ।  
 छल प्रपंच सब भगे, सरलता हुई संगिनी,  
 मुक्तिमार्ग में यही परिणति स्व-पर नंदनी ॥३ ॥  
 अक्षय आत्मविभव पाया तब लोभ नशाया,  
 अनंत चतुष्टय सहजपने प्रभुवर प्रगटाया ।  
 परम पवित्र हुए निर्दोष निरामय स्वामी,  
 अहो पतित-पावन कहलाते त्रिभुवन नामी ॥४ ॥  
 सहज सुखी हो प्रभो हास्य का काम नहीं है ।  
 निज में ही संतुष्ट न रति का नाम कहीं है ।  
 निजानन्द में नहीं अरति या खेद सु आवे,  
 होवे नहीं वियोग शोक फिर क्यों उपजावे ॥५ ॥  
 लौकिक जन ही अरे हास्य में समय गँवावें,  
 रत होवें सुख मान अरति कर फिर दुख पावें ।  
 अहो निशंकित आप स्वयं में निर्भय रहते,  
 करें आपका जाप सर्व भय उनके भगते ॥६ ॥  
 निर्मल आत्मस्वभाव ज्ञान भी निर्मल रहता,  
 लोकालोक विलोक जुगुप्सा कहीं न लहता ।  
 फैली धर्म सुवास वासना दूर भगावें,  
 स्त्री पुरुष नपुंसक वेद नहीं उपजावें ॥७ ॥  
 परम ब्रह्ममय मंगलचर्या प्रभो आपकी,  
 नहीं वेदना होवे किंचित् त्रिविध ताप की ।  
 भान हुआ जब निज स्वभाव का, मूर्छा टूटी,  
 बाह्य परिग्रह की वृत्ति भी सहजहि छूटी ॥८ ॥  
 पर केवल पर दिखे ग्रहण का भाव न आया,  
 निस्पृह निज में तृप्त अलौकिक है प्रभु माया ।  
 चेतन मिश्र अचेतन परिग्रह सब ठुकराया,  
 हुए अकिंचन आप पंथ निर्ग्रन्थ सुभाया ॥९ ॥

शुद्ध जीवास्तिकाय अलौकिक महल आपका,  
 सहज ज्ञान साम्राज्य प्रगट है विभो आपका।  
 नित्य शुद्ध सम्पदा खान है अन्तर माँही,  
 पर से कुछ भी कभी प्रयोजन दीखे नहीं ॥१० ॥  
 स्वानुभूति रमणी है नित ही तृप्ति प्रदायी,  
 ध्रुवस्वभाव ही सिंहासन है आनन्ददायी।  
 निरावरण निर्लेप अनाहारी हो स्वामी।  
 अनुभव-अमृत भोजी नित्य निराकुल नामी ॥११ ॥  
 अहो आप सम आप कहाँ तक महिमा गाऊँ,  
 यही भावना सहज अकिंचन पद प्रगटाऊँ।  
 चरणों में है भक्ति भाव से नमन जिनेश्वर,  
 निज प्रभुता में मग्न रहूँ तुम सम परमेश्वर ॥१२ ॥

(दोहा)

जग से आप उदास हो, जगत आपका दास।  
 यही भावना है प्रभो! रहूँ आपके पास ॥

### अपना स्वरूप

रे जीव ! तू अपना स्वरूप देख तो जरा।  
 दृग-ज्ञान-सुख-वीर्य का भण्डार है भरा ॥टेक ॥  
 नहिं जन्मता मरता नहीं, शाश्वत प्रभु कहा।  
 उत्पाद व्यय होते हुये भी ध्रौव्य ही रहा ॥१ ॥  
 पर से नहीं लेता नहीं देता तनिक पर को।  
 निरपेक्ष है पर से स्वयं में पूर्ण ही अहा ॥२ ॥  
 कर्ता नहीं भोक्ता नहीं स्वामी नहीं पर का।  
 अत्यन्ताभाव रूप से ज्ञायक ही प्रभु सदा ॥३ ॥  
 पर को नहीं मेरी कभी मुझको नहीं पर की।  
 जरूरत पड़े सब परिणामन स्वतंत्र ही अहा ॥४ ॥

पर दृष्टि झूठी छोड़कर निजदृष्टि तू करे।

निज में ही मग्न होय तो आनन्द हो महा ॥५॥

बस मुक्तिमार्ग है यही निजदृष्टि अनुभवन।

निज में ही होवे लीनता शिव पद स्वयं लहा ॥६॥

‘आत्मन्’ कहूँ महिमा कहाँ तक आत्म भाव की।

जिससे बने परमात्मा शुद्धात्म वह कहा ॥७॥

### परमार्थ-शरण

अशरण जग में शरण एक शुद्धात्म ही भाई।

धरो विवेक हृदय में आशा पर की दुखदाई ॥१॥

सुख दुख कोई न बाँट सके यह परम सत्य जानो।

कर्मोदय अनुसार अवस्था संयोगी मानो ॥२॥

कर्म न कोई देवे लेवे प्रत्यक्ष ही देखो।

जन्मे मरे अकेला चेतन तत्त्वज्ञान लेखो ॥३॥

पापोदय में नहीं सहाय का निमित्त बने कोई।

पुण्योदय में नहीं दण्ड का भी निमित्त होई ॥४॥

इष्ट अनिष्ट कल्पना त्यागो हर्ष विषाद तजो।

समता धर महिमामय अपना आत्म आप भजो ॥५॥

शाश्वत सुखसागर अन्तर में देखो लहरावे।

दुर्विकल्प में जो उलझे वह लेश न सुख पावे ॥६॥

मत देखो संयोगों को कर्मोदय मत देखो।

मत देखो पर्यायों को गुणभेद नहीं देखो ॥७॥

अहो देखने योग्य एक ध्रुव ज्ञायक प्रभु देखो।

हो अन्तर्मुख सहज दीखता अपना प्रभु देखो ॥८॥

देखत होय निहाल अहो निज परम प्रभु देखो।

पाया लोकोत्तम जिनशासन आत्मप्रभु देखो ॥९॥

निश्चय नित्यानन्दमयी अक्षय पद पाओगे।

दुखमय आवागमन मिटे भगवान कहाओगे ॥१०॥

## मेरा सहज जीवन

अहो चैतन्य आनन्दमय, सहज जीवन हमारा है।  
 अनादि अनंत पर निरपेक्ष, ध्रुव जीवन हमारा है ॥टेक॥  
 हमारे में न कुछ पर का, हमारा भी नहीं पर में।  
 द्रव्य-दृष्टि हुई सच्ची, आज प्रत्यक्ष निहारा है ॥१॥  
 अनंतों शक्तियाँ उछलें, सहज सुख ज्ञानमय विलसें।  
 अहो प्रभुता परम पावन, वीर्य का भी न पारा है ॥२॥  
 नहीं जन्मूँ नहीं मरता, नहीं घटता नहीं बढ़ता।  
 अगुरुलघु रूप ध्रुव ज्ञायक, सहज जीवन हमारा है ॥३॥  
 सहज ऐश्वर्यमय मुक्ति, अनंतों गुणमयी ऋद्धि।  
 विलसती नित्य ही सिद्धि, सहज जीवन हमारा है ॥४॥  
 किसी से कुछ नहीं लेना, किसी को कुछ नहीं देना।  
 अहो निश्चिंत परमानन्दमय जीवन हमारा है ॥५॥  
 ज्ञानमय लोक है मेरा, ज्ञान ही रूप है मेरा।  
 परम निर्दोष समता मय, ज्ञान जीवन हमारा है ॥६॥  
 मुक्ति में व्यक्त है जैसा, यहाँ अव्यक्त है वैसा।  
 अबद्धस्पृष्ट अनन्य, नियत जीवन हमारा है ॥७॥  
 सदा ही है न होता है, न जिसमें कुछ भी होता है।  
 अहो उत्पाद व्यय निरपेक्ष, ध्रुव जीवन हमारा है ॥८॥  
 विनाशी बाह्य जीवन की, आज ममता तजी झूठी।  
 रहे चाहे अभी जाये, सहज जीवन हमारा है ॥९॥  
 नहीं परवाह अब जग की, नहीं है चाह शिवपद की।  
 अहो परिपूर्ण निष्पृह ज्ञानमय जीवन हमारा है ॥१०॥

एक देखिये जानिये , रमि रहिये इक ठौर।  
 समल विमल न विचारिये, यही सिद्धि नहिं और ॥

## मंगल शृङ्गार

मस्तक का भूषण गुरु आज्ञा, चूड़ामणि तो रागी माने ।  
 सत्-शास्त्र श्रवण है कर्णों का, कुण्डल तो अज्ञानी जाने ॥१॥  
 हीरों का हार तो व्यर्थ कण्ठ में, सुगुणों की माला भूषण ।  
 कर पात्र-दान से शोभित हों, कंगन हथफूल तो हैं दूषण ॥२॥  
 जो घड़ी हाथ में बंधी हुई, वह घड़ी यहीं रह जायेगी ।  
 जो घड़ी आत्म-हित में लगी, वह कर्म बंध विनशायेगी ॥३॥  
 जो नाक में नथुनी पड़ी हुई, वह अन्तर राग बताती है ।  
 श्वास-श्वास में प्रभु सुमिरन से, नासिका शोभा पाती है ॥४॥  
 होठों की यह कृत्रिम लाली, पापों की लाली लायेगी ।  
 जिसमें बँधकर तेरी आत्मा, भव-भव के दुःख उठायेगी ॥५॥  
 होठों पर हँसी शुभ्र होवे, गुणियों को लखते ही भाई ।  
 ये होंठ तभी होते शोभित, तत्त्वों की चर्चा मुख आई ॥६॥  
 क्रीम और पाउडर मुख को, उज्ज्वल नहीं मलिन बनाता है ।  
 हो साम्यभाव जिस चेहरे पर, वह चेहरा शोभा पाता है ॥७॥  
 आँखों में काजल शील का हो, अरु लज्जा पाप कर्म से हो ।  
 स्वामी का रूप बसा होवे, अरु नाता केवल धर्म से हो ॥८॥  
 जो कमर करधनी से सुन्दर, माने उस सम है मूढ़ नहीं ।  
 जो कमर ध्यान में कसी गई, उससे सुन्दर है नहीं कहीं ॥९॥  
 पैरों में पायल ध्वनि करतीं, वे अन्तर द्वन्द्व बताती हैं ।  
 जो चरण चरण की ओर बढ़े, उनके सन्मुख शरमाती हैं ॥१०॥  
 जड़ वस्त्रों से तो तन सुन्दर, रागी लोगों को दिखता है ।  
 पर सच पूछो उनके अन्दर, आत्म का रूप सिसकता है ॥११॥  
 जब बाह्य मुमुक्षु रूप धार, ज्ञानाम्बर को धारण करता ।  
 अत्यन्त मलिन रागाम्बर तज, सुन्दर शिवरूप प्रकट करता ॥१२॥  
 एकत्व ज्ञानमय ध्रुव स्वभाव ही, एक मात्र सुन्दर जग में ।  
 जिसकी परिणति उसमें ठहरे, वह स्वयं विचरती शिवमग में ॥१३॥

वह समवसरण में सिंहासन पर, गगन मध्य ही तिष्ठाता ।  
 रत्नत्रय के भूषण पहने, अपनी प्रभुता को प्रगटाता ॥१४ ॥  
 पर नहीं यहाँ भी इतिश्री, योगों को तज स्थिर होता ।  
 अरु एक समय में सिद्ध हुआ, लोकाग्र जाय अविचल होता ॥१५ ॥

### सांत्वनाष्टक

शान्तचित्त हो, निर्विकल्प हो, आत्मन् निज में तृप्त रहो ।  
 व्यग्र न होओ, क्षुब्ध न होओ, चिदानन्द रस सहज पिओ ॥टेक ॥  
 स्वयं स्वयं में सर्व वस्तुएँ, सदा परिणमित होती हैं ।  
 इष्ट-अनिष्ट न कोई जग में, व्यर्थ कल्पना झूठी है ॥  
 धीर-वीर हो मोहभाव तज, आत्म-अनुभव किया करो ॥१ ॥ व्यग्र ॥  
 देखो प्रभु के ज्ञान माहिं, सब लोकालोक झलकता है ।  
 फिर भी सहज मग्न अपने में, लेश नहीं आकुलता है ॥  
 सच्चे भक्त बनो प्रभुवर के, ही पथ का अनुसरण करो ॥२ ॥ व्यग्र ॥  
 देखो मुनिराजों पर भी, कैसे-कैसे उपसर्ग हुए ।  
 धन्य-धन्य वे साधु साहसी, आराधन से नहीं चिगे ॥  
 उनको निज-आदर्श बनाओ, उर में समता-भाव धरो ॥३ ॥ व्यग्र ॥  
 व्याकुल होना तो, दुख से, बचने का कोई उपाय नहीं ।  
 होगा भारी पाप बंध ही, होवे भव्य अपाय नहीं ॥  
 ज्ञानाभ्यास करो मन माहीं, दुर्विकल्प दुखरूप तजो ॥४ ॥ व्यग्र ॥  
 अपने में सर्वस्व है अपना, परद्रव्यों में लेश नहीं ।  
 हो विमूढ़ पर में ही क्षण-क्षण, करो व्यर्थ संक्लेश नहीं ॥  
 अरे विकल्प अकिंचित्कर ही, ज्ञाता हो ज्ञाता ही रहो ॥५ ॥ व्यग्र ॥  
 अन्तर्दृष्टि से देखो नित, परमानन्दमय आत्मा ।  
 स्वयंसिद्ध निर्द्वन्द्व निरामय, शुद्ध बुद्ध परमात्मा ॥  
 आकुलता का काम नहीं कुछ, ज्ञानानन्द का वेदन हो ॥६ ॥ व्यग्र ॥



सहज तत्त्व की सहज भावना, ही आनन्द प्रदाता है ।  
 जो भावे निश्चय शिव पावे, आवागमन मिटाता है ॥  
 सहजतत्त्व ही सहज ध्येय है, सहजरूप नित ध्यान धरो ॥७॥ व्यग्र ॥  
 उत्तम जिन वचनामृत पाया, अनुभव कर स्वीकार करो ।  
 पुरुषार्थी हो स्वाश्रय से इन, विषयों का परिहार करो ॥  
 ब्रह्मभावमय मंगल चर्या, हो निज में ही मग्न रहो ॥८॥ व्यग्र ॥

### समता षोडशी

समता रस का पान करो, अनुभव रस का पान करो ।  
 शान्त रहो शान्त रहो, सहज सदा ही शान्त रहो ॥टेक॥  
 नहीं अशान्ति का कुछ कारण, ज्ञान दृष्टि से देख अहो ।  
 क्यों पर लक्ष करे रे मूरख, तेरे से सब भिन्न अहो ॥१॥  
 देह भिन्न है कर्म भिन्न हैं, उदय आदि भी भिन्न अहो ।  
 नहीं अधीन है तेरे कोई, सब स्वाधीन परिणमित हो ॥२॥  
 पर नहीं तुझसे कहता कुछ भी, सुख दुख का कारण नहीं हो ।  
 करके मूढ़ कल्पना मिथ्या, तू ही व्यर्थ आकुलित हो ॥३॥  
 इष्ट अनिष्ट न कोई जग में, मात्र ज्ञान के ज्ञेय अहो ।  
 हो निरपेक्ष करो निज अनुभव, बाधक तुमको कोई न हो ॥४॥  
 तुम स्वभाव से ही आनंदमय, पर से सुख तो लेश न हो ।  
 झूठी आशा तृष्णा छोड़ो, जिन वचनों में चित्त धरो ॥५॥  
 पर द्रव्यों का दोष न देखो, क्रोध अग्नि में नहीं जलो ।  
 नहीं चाहो अनुरूप प्रवर्तन, भेद ज्ञान ध्रुवदृष्टि धरो ॥६॥  
 जो होता है वह होने दो, होनी को स्वीकार करो ।  
 कर्त्तापन का भाव न लाओ, निज हित का पुरुषार्थ करो ॥७॥  
 दया करो पहले अपने पर, आराधन से नहीं चिगो !  
 कुछ विकल्प यदि आवे तो भी, सम्बोधन समतामय हो ॥८॥

यदि माने तो सहज योग्यता, अंकार का भाव न हो ।  
 नहीं माने भवितव्य विचारो, जिससे किंचित् खेद न हो ॥९ ॥  
 हीन भाव जीवों के लखकर, ग्लानि भाव नहीं मन में हो ।  
 कर्मोदय की अति विचित्रता, समझो स्थितिकरण करो ॥१० ॥  
 अरे कलुषता पाप बंध का, कारण लखकर त्याग करो ।  
 आलस छोड़ो बनो उद्यमी, पर सहाय की चाह न हो ॥११ ॥  
 पापोदय में चाह व्यर्थ है, नहीं चाहने पर भी हो ।  
 पुण्योदय में चाह व्यर्थ है, सहजपने मन वांछित हो ॥१२ ॥  
 आर्तध्यान कर बीज दुख के, बोना तो अविवेक अहो ।  
 धर्म ध्यान में चित्त लगाओ, होय निर्जरा बंध न हो ॥१३ ॥  
 करो नहीं कल्पना असम्भव, अब यथार्थ स्वीकार करो ।  
 उदासीन हो पर भावों से सम्यक् तत्त्व विचार करो ॥१४ ॥  
 तजो संग लौकिक जीवों का, भोगों के आधीन न हो ।  
 सुविधाओं की दुविधा त्यागो, एकाकी शिव पंथ चलो ॥१५ ॥  
 अति दुर्लभ अवसर पाया है, जग प्रपंच में नहीं पड़ो ।  
 करो साधना जैसे भी हो, यह नर भव अब सफल करो ॥१६ ॥

### ज्ञानाष्टक

निरपेक्ष हूँ कृतकृत्य मैं, बहु शक्तियों से पूर्ण हूँ ।  
 मैं निरालम्बी मात्र ज्ञायक, स्वयं में परिपूर्ण हूँ ॥  
 पर से नहीं सम्बन्ध कुछ भी, स्वयंसिद्ध प्रभु सदा ।  
 निर्बाध अरु निःशंक निर्भय, परम आनन्दमय सदा ॥१ ॥  
 निज लक्ष से होऊँ सुखी, नहिं शेष कुछ अभिलाष है ।  
 निज में ही होवे लीनता, निज का हुआ विश्वास है ॥  
 अमूर्तिक चिन्मूर्ति मैं, मंगलमयी गुणधाम हूँ ।  
 मेरे लिए मुझसा नहीं, सच्चिदानन्द अभिराम हूँ ॥२ ॥

स्वाधीन शाश्वत मुक्त अक्रिय अनन्त वैभववान हूँ ।  
 प्रत्यक्ष अन्तर में दिखे, मैं ही स्वयं भगवान हूँ ॥  
 अव्यक्त वाणी से अहो, चिन्तन न पावे पार है ।  
 स्वानुभव में सहज भासे, भाव अपरम्पार है ॥३॥  
 श्रद्धा स्वयं सम्यक् हुई, श्रद्धान ज्ञायक हूँ हुआ ।  
 ज्ञान में बस ज्ञान भासे, ज्ञान भी सम्यक् हुआ ॥  
 भग रहे दुर्भाव सम्यक्, आचरण सुखकार है ।  
 ज्ञानमय जीवन हुआ, अब खुला मुक्ति द्वार है ॥४॥  
 जो कुछ झलकता ज्ञान में, वह ज्ञेय नहीं बस ज्ञान है ।  
 नहीं ज्ञेयकृत किञ्चित् अशुद्धि, सहज स्वच्छ सुज्ञान है ॥  
 परभाव शून्य स्वभाव मेरा, ज्ञानमय ही ध्येय है ।  
 ज्ञान में ज्ञायक अहो, मम ज्ञानमय ही ज्ञेय है ॥५॥  
 ज्ञान ही साधन, सहज अरु ज्ञान ही मम साध्य है ।  
 ज्ञानमय आराधना, शुद्ध ज्ञान ही आराध्य है ॥  
 ज्ञानमय ध्रुव रूप मेरा, ज्ञानमय सब परिणमन ।  
 ज्ञानमय ही मुक्ति मम, मैं ज्ञानमय अनादिनिधन ॥६॥  
 ज्ञान ही है सार जग में, शेष सब निस्सार है ।  
 ज्ञान से च्युत परिणमन का नाम ही संसार है ॥  
 ज्ञानमय निजभाव को बस भूलना अपराध है ।  
 ज्ञान का सम्मान ही, संसिद्धि सम्यक् राध है ॥७॥  
 अज्ञान से ही ब, सम्यग्ज्ञान से ही मुक्ति है ।  
 ज्ञानमय संसाधना, दुख नाशने की युक्ति है ॥  
 जो विराधक ज्ञान का, सो डूबता मँझधार है ।  
 ज्ञान का आश्रय करे, सो होय भव से पार है ॥८॥  
 यों जान महिमा ज्ञान की, निज ज्ञान को स्वीकार कर ।  
 ज्ञान के अतिरिक्त सब, परभाव का परिहार कर ॥  
 निजभाव से ही ज्ञानमय हो, परम-आनन्दित रहो ।  
 होय तन्मय ज्ञान में, अब शीघ्र शिव-पदवी धरो ॥९॥

## ब्रह्मचर्य द्वादशी

ब्रह्मचर्य की अद्भुत महिमा, आज बताऊँ भली-भली ।  
 ब्रह्मचर्य बिन जीवन निष्फल, बात कहूँ मैं खरी-खरी ॥टेक ॥  
 निज सुख शान्ति निज में ही है, बाहर कहीं न पाओगे ।  
 व्यर्थ भ्रमे हो और भ्रमोगे, समय चूक पछताओगे ॥  
 भोगों में तो फंस कर भाई, तुमने भारी विपद भरी ॥ब्रह्म ॥१ ॥  
 जैसे बड़ी-बड़ी नदियों पर, बाँध बँधे देखे होंगे ॥  
 सोचो बाँध टूट जावे तो, क्यों नहीं नगर नष्ट होंगे ॥  
 ब्रह्मचर्य का बाँध टूटने से, बरबादी घड़ी-घड़ी ॥ब्रह्म ॥२ ॥  
 भोगों का घेरा ऐसा है, बाहर वाले ललचावें ।  
 फँसने वाले भी पछतावें, सुख नहीं कोई पावे ॥  
 धोखे में आवे नहीं ज्ञानी, शुद्धात्म की प्रीति धरी ॥ब्रह्म ॥३ ॥  
 पहले तो मिलना ही दुर्लभ, मिल जावें तो भोग कठिन ।  
 भोगों से तृष्णा ही बढ़ती, इनसे होना तृप्ति कठिन ॥  
 पाप कमावे धर्म गमावे, घूमे भव की गली-गली ॥ब्रह्म ॥४ ॥  
 बत्ती तेल प्रकाश नाश ज्यों, दीपक धुआँ उगलता है ।  
 रत्नत्रय को नाश मूढ़, भोगों में फँसकर हँसता है ॥  
 सन्निपात का ही यह हँसना, सन्मुख जिसके मौत खड़ी ॥ब्रह्म ॥५ ॥  
 सर्वव्रतों में चक्रवर्ती अरु, सब धर्मों में सार कहा ।  
 अनुपम महिमा ब्रह्मचर्य की, शिवमारग शिवरूप अहा ॥  
 ब्रह्मचर्य धारी ज्ञानी के, निजानन्द की झरे झड़ी ॥ब्रह्म ॥६ ॥  
 पर-स्त्री संग त्याग मात्र से, ब्रह्मचर्य नहिं होता है ।  
 पंचेन्द्रिय के विषय छूट कर, निज में होय लीनता है ॥  
 अतीचार जहाँ लगे न कोई, ब्रह्म भावना घड़ी-घड़ी ॥ब्रह्म ॥७ ॥  
 सर्व कषायें अब्रह्म जानो, राग कुशील कहा दुखकार  
 सर्व विकारों की उत्पादक, पर-दृष्टि ही महा विकार ॥  
 द्रव्यदृष्टि शुद्धात्म लीनता, ब्रह्मचर्य सुखकार यही ॥ब्रह्म ॥८ ॥

सबसे पहले तत्त्वज्ञान कर, स्वपर भेद-विज्ञान करो ।  
 निजानन्द का अनुभव करके, भोगों में सुखबुद्धि तजो ॥  
 कोमल पौधे की रक्षा हित, शील बाढ़ नौ करो खड़ी ॥ब्रह्म. ॥९ ॥  
 समता रस से उसे सींचना, सादा जीवन तत्त्व विचार ।  
 सत्संगति अरु ब्रह्म भावना, लगे नहिं किंचित् अतिचार ॥  
 कमजोरी किंचित् नहीं लाना, बाधायें हों बड़ी-बड़ी ॥ब्रह्म. ॥१० ॥  
 मर्यादा का करें उल्लंघन, जग में भी संकट पावें ।  
 निज मर्यादा में आते ही, संकट सारे मिट जावें ॥  
 निज स्वभाव सीमा में आओ, पाओ अविचल मुक्ति मही ॥ब्रह्म. ॥११ ॥  
 चिंता छोड़ो स्वाश्रय से ही, सर्व विकल्प नशायेंगे ।  
 कर्म छोड़ खुद ही भागेंगे, गुण अनन्त प्रगटायेंगे ॥  
 'आत्मन्' निज में ही रम जाओ, आई मंगल आज घड़ी ॥ब्रह्म. ॥१२ ॥

### निर्ग्रन्थ भावना

निर्ग्रन्थता की भावना अब हो सफल मेरी,  
 बीते अहो आराधना में हर घड़ी मेरी ॥टेक ॥  
 करके विराधन तत्त्व का, बहु दुख उठाया ।  
 आराधना का यह समय, अतिपुण्य से पाया ॥  
 मिथ्या प्रपंचों में उलझ अब, क्यों करूँ देरी? निर्ग्रन्थता...  
 जब से लिया चैतन्य के, आनन्द का आस्वाद ॥  
 रमणीक भोग भी लगे, मुझको सभी निःस्वाद ।  
 ध्रुवधाम की ही ओर दौड़े, परिणति मेरी ॥ निर्ग्रन्थता...  
 पर मैं नहीं कर्तव्य मुझको, भासता कुछ भी ।  
 अधिकार भी दीखे नहीं, जग में अरे कुछ भी ।  
 निज अंतरंग में ही दिखे, प्रभुता मुझे मेरी ॥ निर्ग्रन्थता...  
 क्षण-क्षण कषायों के प्रसंग, ही बनें जहाँ ।  
 मोही जनों के संग में, सुख शान्ति हो कहाँ ?  
 जग संगति से तो बड़े, दुखमय भ्रमण फेरी ॥ निर्ग्रन्थता...

अब तो रहूँ निर्जन वनों में, गुरुजनों के संग ।  
 शुद्धात्मा के ध्यानमय हो, परिणति असंग ।  
 निजभाव में ही लीन हो, मेटूँ जगत-फेरी ॥ निर्ग्रन्थता...  
 कोई अपेक्षा हो नहीं, निर्द्वन्द्व हो जीवन ।  
 संतुष्ट निज में ही रहूँ, नित आप सम भगवन् ।  
 हो आप सम निर्मुक्त, मंगलमय दशा मेरी ॥ निर्ग्रन्थता ..  
 अब तो सहा जाता नहीं, बोझा परिग्रह का ।  
 विग्रह का मूल लगता है, विकल्प विग्रह का ।  
 स्वाधीन स्वाभाविक सहज हो, परिणति मेरी ॥ निर्ग्रन्थता..

### अलोचना पाठ

(दोहा)

वन्दों पांचों परम गुरु, चौबीसों जिनराज ।  
 करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरन के काज ॥१ ॥

(चौपाई)

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अतिभारी ।  
 तिनकी अब निवृत्ति काजा, तुम शरन लही जिनराजा ॥२ ॥  
 इक-वे-ते-चउ इन्द्री वा, मनरहित-सहित जे जीवा ।  
 तिनकी नहीं करुना धारी, निरदइ ह्वै घात विचारी ॥३ ॥  
 समरम्भ समारम्भ आरम्भ, मन-वच-तन कीने प्रारम्भ ।  
 कृत-कारित-मोदन करिकैं, क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं ॥४ ॥  
 शत आठ जु इमि भेदन तैं, अघ कीने पर-छेदन तैं ।  
 तिनकी कहूँ कौलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी ॥५ ॥  
 विपरीत एकान्त विनय के, संशय अज्ञान कुनय के ।  
 वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जात कहीने ॥६ ॥  
 कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी ।  
 या विध मिथ्यात भ्रमायो, चहुँगति मधि दोष उपायो ॥७ ॥

हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, पर वनिता सौं दृग जोरी ।  
 आरम्भ परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विधि कीनो ॥८ ॥  
 सपरस रसना घनन को, दृग कान विषय सेवन को ।  
 बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय-अन्याय न जाने ॥९ ॥  
 फल पंच उदुम्बर खाये, मधु मांस मद्य चित चाये ।  
 नहीं अष्ट मूलगुण धारे, सेये जु विषय दुखकारे ॥१० ॥  
 दुइबीस अभख जिन गाये, सो भी निशदिन भुंजाये ।  
 कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों-त्यों करि उदर भरायो ॥११ ॥  
 अनंतानुबन्धी जु जानो, प्रत्याखान अप्रत्याख्यानो ।  
 संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडश सुनिये ॥१२ ॥  
 परिहास अरति रति शोक, भय नि त्रिवेद संयोग ।  
 पनवीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम ॥१३ ॥  
 निद्रावश शयन कराई, सुपनन मधि दोष लगाई ।  
 फिर जागं विषयवन धायो, नानाविध विषफल खायो ॥१४ ॥  
 आहार विहार निहारा, इनमें नहीं जतन विचारा ।  
 बिन देखी धरी उठायी, बिन शोधी वस्तु जु खायी ॥१५ ॥  
 तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकल्प उपजायो ।  
 कछु सुधि-बुधि नाहिं रही है, मिथ्यामति छाय गयी है ॥१६ ॥  
 मरयादा तुम ढिंग लीनी, ताहू में दोष जु कीनी ।  
 भिन्न-भिन्न अब कैसे कहिये, तुम ज्ञान विषैं सब पइये ॥१७ ॥  
 हा हा मैं दुठ अपराधी, त्रस जीवन राशि विराधी ।  
 थावर की जतन न कीनी, उर में करुणा नहिं लीनी ॥१८ ॥  
 पृथ्वी बहु खोद कराई, महलादिक जागा चिनाई ।  
 पुनि बिन गाल्यो जल ढोल्यो, पंखा तैं पवन विलोल्यो ॥१९ ॥  
 हा हा मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी ।  
 तामधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनन्दा ॥२० ॥  
 हा हा परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई ।  
 तामधि जे जीव जु आये, ते हू परलोक सिधाये ॥२१ ॥

बींध्यो अन्न राति पिसायो, ईंधन बिन सोधि जलायो ।  
 झाड़ू ले जागा बुहारी, चींटी आदिक जीव विदारी ॥२२ ॥  
 जल छान जिवानी कीनी, सोहू पुनि डारि जु दीनी ।  
 नहिं जलथानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई ॥२३ ॥  
 जल मल मोरिन गिरवायो, कृमि कुल बहुघात करायो ।  
 नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये ॥२४ ॥  
 अन्नादिक शोध कराई, तामें जु जीव निसराई ।  
 तिनका नहिं जतन कराया, गलियारे धूप डराया ॥२५ ॥  
 पुनि द्रव्य कमावन काजै, बहु आरम्भ हिंसा साजै ।  
 किये तिसनावश अघ भारी, करुणा नहिं रंच विचारी ॥२६ ॥  
 इत्यादिक पाप अनन्ता, हम कीने श्री भगवंता ।  
 सन्तति चिरकाल उपाई, वाणी तैं कहिय न जाई ॥२७ ॥  
 ताको जु उदय अब आयो, नानाविध मोहि सतायो ।  
 फल भुंजत जिय दुःख पावे, वचतैं कैसे करि गावै ॥२८ ॥  
 तुम जानत केवलज्ञानी, दुःख दूर करो शिवथानी ।  
 हम तो तुम शरन लही है, जिन तारन विरद सही है ॥२९ ॥  
 इक गाँवपति जो होवे, सो भी दुखिया दुख खोवे ।  
 तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेटो अन्तरजामी ॥३० ॥  
 द्रोपदि को चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो ।  
 अंजन से किये अकामी, दुख मेटो अन्तरजामी ॥३१ ॥  
 मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद निहारो ।  
 सब दोष रहित करि स्वामी, दुख मेटहु अन्तरजामी ॥३२ ॥  
 इन्द्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनि में नहिं लुभाऊँ ।  
 रागादिक दोष हरीजे, परमात्म निज पद दीजे ॥३३ ॥

(दोहा)

दोष रहित जिनदेवजी, निजपद दीजो मोय ।  
 सब जीवन के सुख बढ़े, आनंद मंगल होय ॥३४ ॥  
 अनुभव माणिक पारखी, 'जौहरी' आप जिनन्द ।  
 ये ही वर मोहि दीजिये, चरन शरन आनन्द ॥३५ ॥



### भावना बत्तीसी

प्रेम भाव हो सब जीवों से, गुणी जनों में हर्ष प्रभो ।  
 करुणा-स्रोत बहे दुखियों पर, दुर्जन में माध्यस्थ विभो ॥१ ॥  
 यह अनन्त बल-शील आत्मा, हो शरीर से भिन्न प्रभो ।  
 ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको ॥२ ॥  
 सुख-दुख बैरी बन्धु वर्ग में, कांच कनक में समता हो ।  
 वन-उपवन प्रासाद कुटी में, नहीं खेद नहिं ममता हो ॥३ ॥  
 जिस सुन्दरतम पथ पर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ ।  
 वह सुन्दर पथ ही प्रभु ! मेरा, बना रहे अनुशीलन पथ ॥४ ॥  
 एकेन्द्रिय आदिक प्राणी की, यदि मैंने हिंसा की हो ।  
 शुद्ध हृदय से कहता हूँ वह, निष्फल हो दुष्कृत्य प्रभो ॥५ ॥  
 मोक्षमार्ग प्रतिकूल प्रवर्तन, जो कुछ किया कषायों से ।  
 विपथ-गमन सब कालुष मेरे, मिट जावें सद्भावों से ॥६ ॥  
 चतुर वैद्य विष विक्षत करता, त्यों प्रभु ! मैं भी आदि उपांत ।  
 अपनी निन्दा आलोचन से, करता हूँ पापों को शान्त ॥७ ॥  
 सत्य अहिंसादिक व्रत में भी, मैंने हृदय मलीन किया ।  
 व्रत विपरीत-प्रवर्तन करके , शीलाचरण विलीन किया ॥८ ॥  
 कभी वासना की सरिता का, गहन सलिल मुझ पर छाया ।  
 पी-पीकर विषयों की मदिरा, मुझ में पागलपन आया ॥९ ॥  
 मैंने छली और मायावी, हो असत्य-आचरण किया ।  
 पर-निन्दा गाली चुगली जो, मुंह पर आया वमन किया ॥१० ॥  
 निरभिमान उज्वल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे ।  
 निर्मल जल की सरिता सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे ॥११ ॥  
 मुनि चक्री शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे ।  
 गाते वेद पुराण जिसे वह, परम देव मम हृदय रहे ॥१२ ॥  
 दर्शन-ज्ञान स्वभावी जिसने, सब विकार ही वमन किये ।  
 परम ध्यान गोचर परमात्म, परमदेव मम हृदय रहे ॥१३ ॥

जो भव-दुख का विध्वंसक है, विश्वविलोकी जिसका ज्ञान ।  
 योगीजन के ध्यानगम्य वह, बसे हृदय में देव महान ॥१४ ॥  
 मुक्तिमार्ग का दिग्दर्शक है, जन्म-मरण से परम अतीत ।  
 निष्कलंक त्रैलोक्यदर्शि वह, देव रहे मम हृदय समीप ॥१५ ॥  
 निखिल विश्व के वशीकरण वे, राग रहे न द्वेष रहे ।  
 शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूपी, परम देव मम हृदय रहे ॥१६ ॥  
 देख रहा जो निखिल विश्व को, कर्मकलंक विहीन विचित्र ।  
 स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह, देव करे मम हृदय पवित्र ॥१७ ॥  
 कर्मकलंक अछूत न जिसका, कभी छू सके दिव्य प्रकाश ।  
 मोह तिमिर को भेद चला जो, परम शरण मुझको वह आप्त ॥१८ ॥  
 जिसकी दिव्य ज्योति के आगे, फीका पड़ता सूर्य प्रकाश ।  
 मोह तिमिर को भेद चला जो, परमशरण मुझको वह आप्त ॥१९ ॥  
 जिसके ज्ञानरूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ ।  
 आदिअंत से रहित शांत शिव, परम शरण मुझको वह आप्त ॥२० ॥  
 जैसे अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुये स्वयमेव ।  
 भय विषाद चिन्ता सब जिसके परम शरण मुझको वह देव ॥२१ ॥  
 तृण, चौकी, शिल, शैल, शिखर नहीं, आत्म-समाधि के आसन ।  
 संस्तर पूजा संघ सम्मिलन, नहीं समाधि के साधन ॥२२ ॥  
 इष्ट-वियोग अनिष्ट-योग में, विश्व मानता है मातम ।  
 हेय सभी हैं विश्व-वासना, उपादेय निर्मल आतम ॥२३ ॥  
 बाह्य जगत कुछ भी नहीं मेरा, और न बाह्य जगत का मैं ।  
 यह निश्चय कर छोड़ बाह्य को, मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमें ॥२४ ॥  
 अपनी निधि तो अपने में है, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास ।  
 जग का सुख तो मृगतृष्णा है, झूठे हैं उसके पुरुषार्थ ॥२५ ॥  
 अक्षय है शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञानस्वभावी है ।  
 जो कुछ बाहर है सब पर है, कर्माधीन विनाशी है ॥२६ ॥

तन से जिसका ऐक्य नहीं, हो सुत तिय मित्रों से कैसे ।  
 चर्म दूर होने पर तन से, रोम समूह रहें कैसे ॥२७ ॥  
 महा कष्ट पाता जो करता, पर पदार्थ जड़ देह संयोग ।  
 मोक्ष महल का पथ है सीधा, जड़-चेतन का पूर्ण वियोग ॥२८ ॥  
 जो संसार पतन के कारण, उन विकल्प जालों को छोड़ ।  
 निर्विकल्प निर्द्वन्द्व आत्मा, फिर-फिर लीन उसी में हो ॥२९ ॥  
 स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते ।  
 करे आप फल देय अन्य तो, स्वयं किये निष्फल होते ॥३० ॥  
 अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई न फल देता कुछ भी ।  
 'पर देता है' यह विचार तज, स्थिर हो छोड़ प्रमादी धी ॥३१ ॥  
 निर्मल सत्य शिवं सुन्दर है, 'अमितगति' वह देव महान ।  
 शाश्वत निज में अनुभव करते, पाते निर्मल पद निर्वाण ॥३२ ॥

### मेरी भावना

जिसने राग-द्वेष-कामादिक जीते सब जग जान लिया ।  
 सब जीवों को मोक्षमार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया ॥  
 बुद्ध-वीर-जिन-हरि-हर-ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो ।  
 भक्ति-भाव से प्रेरित हो, यह चित्त उसी में लीन रहो ॥१ ॥  
 विषयों की आशा नहिं जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं ।  
 निज-पर के हित साधन में जो, निश-दिन तत्पर रहते हैं ॥  
 स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं ।  
 ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुखसमूह को हरते हैं ॥२ ॥  
 रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे ।  
 उन्हीं जैसी चर्या में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे ॥  
 नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहिं कहा करूँ ।  
 पर-धन-वनिता पर न लुभाऊँ, सन्तोषामृत पिया करूँ ॥३ ॥  
 अहङ्कार का भाव न रक्खूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूँ ।  
 देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या-भाव धरूँ ॥

रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूँ  
 बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ ॥४ ॥  
 मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे ।  
 दीन-दुखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा स्रोत बहे ॥  
 दुर्जन क्रूर-कुमार्ग रतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे ।  
 साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे ॥५ ॥  
 गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे ।  
 बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे ॥  
 होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे ।  
 गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ॥६ ॥  
 कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे ।  
 लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे ॥  
 अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे ।  
 तो भी न्याय-मार्ग से मेरा, कभी न षट् डिगने पावे ॥७ ॥  
 होकर सुख में मग्न न फूलैं, दुख में कभी न घबरावें ।  
 पर्वत नदी श्मशान-भयानक, अटवी से नहिं भय खावें ॥  
 रहे अडोल-अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे ।  
 इष्ट-वियोग अनिष्ट-योग में, सहनशीलता दिखलावे ॥८ ॥  
 सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे ।  
 बैर-भाव अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे ॥  
 घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावे ।  
 ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावें ॥९ ॥  
 ईति-भीति व्यापे नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे ।  
 धर्म-निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे ॥  
 रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे ।  
 परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्वहित किया करे ॥१० ॥

फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर ही रहा करे ।  
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे ॥  
बनकर सब 'युगवीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करें ।  
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दुख संकट सहा करें ॥११ ॥

## वैराग्य भावना

(दोहा)

बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जगमाहिं ।  
त्यों चक्री नृप सुख करै, धर्म विसारै नाहिं ॥१ ॥

(जोगीरासा या नरेंद्र छंद)

इहविध राज करै नर नायक, भोगे पुण्य विशालो ।  
सुख सागर में रमत निरन्तर, जात न जान्यो कालो ॥  
एक दिवस शुभ कर्म संजोगे, क्षेमंकर मुनि वन्दे ।  
देखे श्रीगुरु के पद पंकज, लोचन अलि आनन्दे ॥२ ॥  
तीन प्रदक्षिण दे शिर नायो, कर पूजा थुति कीनी ।  
साधु समीप विनय कर बैठ्यौ, चरनन में दिठि दीनी ॥  
गुरु उपदेश्यो धर्म शिरोमणि, सुन राजा वैरागे ।  
राज-रमा-वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे ॥३ ॥  
मुनिसूरज कथनी किरणावलि, लगत भरमबुधि भागी ।  
भवतनभोग स्वरूप विचार्यो, परम धरम अनुरागी ॥  
इह संसार महावन भीतर, भ्रमते ओर न आवै ॥  
जामन मरन जरा दव दाझै, जीव महादुख पावै ॥४ ॥  
कबहूँ जाय नरक थिति भुंजै, छेदन-भेदन भारी ।  
कबहूँ पशु परजाय धरै तहँ, वध-बंधन-भयकारी ॥  
सुरगति में पर-संपत्ति देखे, राग उदय दुःख होई ।  
मानुषयोनि अनेक विपत्तिमय, सर्व सुखी नहिं कोई ॥५ ॥  
कोई इष्ट वियोगी विलखै, कोई अनिष्ट संयोगी ।  
कोई दीन दरिद्री विगूचे, कोई तन के रोगी ॥

किसत्री घर कलिहारी नारी, कै बैरी सम भाई ।  
 किसही के दुःख बाहिर दीखें, किस ही उर दुचिताई ॥६ ॥  
 कोई पुत्र बिना नित झूरै, होय मरै तब रोवै ।  
 खोटी संतति सों दुःख उपजै, क्यों प्राणी सुख सोवै ॥  
 पुण्य उदय जिनके तिनके भी, नाहिं सदा सुख साता ।  
 यह जगवास जथारथ देखे, सब दीखै दुःख दाता ॥७ ॥  
 जो संसार विषैं सुख होता, तीर्थकर क्यों त्यागे ।  
 काहे को शिव साधन करते, संजम सों अनुरागे ॥  
 देह अपावन अथिर घिनावन, यामैं सार न कोई ।  
 सागर के जल सों शुचि कीजै, तो भी शुद्ध न होई ॥८ ॥  
 सप्त-कुधातु भरी मल मूरति, चाम लपेटी सोहै ।  
 अन्तर देखत या सम जग में, अवर अपावन को है ॥  
 नव मल द्वार स्रवैं निशि-वासर, नाम लिये घिन आवै ।  
 व्याधि उपाधि अनेक जहाँ तहँ, कौन सुधी सुख पावै ॥९ ॥  
 पोषत तो दुःख दोष करै अति, शोषत सुख उपजावै ।  
 दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढावै ॥  
 राचन जोग स्वरूप न याको, विरचन जोग सही है ।  
 यह तन पाय महातप कीजै, यामैं सार यही है ॥१० ॥  
 भोग बुरे भव रोग बढावैं, बैरी हैं जग जीके ।  
 बेरस होय विपाक समय अति, सेवत लागैं नीके ॥  
 वज्र अगनि विष से विषधर से, ये अधिके दुःखदाई ।  
 धर्म रतन के चोर चपल अति, दुर्गति पंथ सहाई ॥११ ॥  
 मोह उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानै ।  
 ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन मानै ॥  
 ज्यों-ज्यों भोग संजोग मनोहर, मन वांछित जन पावै ।  
 तृष्णा नागिन त्यों-त्यों डंकै, लहर जहर की आवै ॥१२ ॥  
 मैं चक्रीपद पाय निरन्तर, भोगे भोग घनेरे ।  
 तो भी तनिक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे ॥

राज समाज महा अघ कारण, बैर बढ़ावन हारा ।  
 वेश्या सम लक्ष्मी अति चंचल, याका कौन पतियारा ॥१३ ॥  
 मोह महारिपु बैर विचार्यो, जगजिय संकट डारे ।  
 तन कारागृह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवारे ॥  
 सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरण-तप, ये जिय के हितकारी ।  
 ये ही सार असार और सब, यह चक्री चितधारी ॥१४ ॥  
 छोड़े चौदह रत्न नवों निधि, अरु छोड़े संग साथी ।  
 कोड़ि अठारह घोड़े छोड़े, चौरासी लख हाथी ॥  
 इत्यादिक सम्पति बहुतेरी, जीरण तृण सम त्यागी ।  
 नीति विचार नियोगी सुत कों, राज्य दियो बड़भागी ॥१५ ॥  
 होय निःशल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे ।  
 श्रीगुरु चरण धरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे ॥  
 धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरज धारी ।  
 ऐसी सम्पति छोड़ बसे वन, तिनपद धोक हमारी ॥१६ ॥

(दोहा)

परिग्रह पोट उतार सब, लीनो चारित पंथ ।  
 निजस्वभाव में थिर भये, वज्रनाभि निरग्रंथ ॥१७ ॥

### अमूल्य तत्त्व विचार

बहु पुण्य-पुञ्ज-प्रसङ्ग से शुभ देह मानव का मिला ।  
 तो भी अरे! भवचक्र का फेरा न एक कभी टला ॥१ ॥  
 सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते, सुख जाता दूर है ।  
 तू क्यों भयंकर भावमरण-प्रवाह में चकचूर है ॥२ ॥  
 लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिये?  
 परिवार और कुटुम्ब है क्या वृद्धि? कुछ नहिं मानिये ॥३ ॥  
 संसार का बढ़ना अरे! नर देह की यह हार है ।  
 नहीं एक क्षण तुमको अरे! इसका विवेक विचार है ॥४ ॥

निर्दोष सुख निर्दोष आनन्द लो जहाँ भी प्राप्त हो ।  
 यह दिव्य अन्तःतत्त्व जिससे बन्धनों से मुक्त हो ॥५ ॥  
 परवस्तु में मूर्छित न हो इसकी रहे मुझको दया ।  
 वह सुख सदा ही त्याज्य रे ! पश्चात् जिसके दुःख भरा ॥६ ॥  
 मैं कौन हूँ आया कहाँ से और मेरा रूप क्या ?  
 सम्बन्ध दुःखमय कौन है ? स्वीकृत करूँ परिहार क्या ॥७ ॥  
 इसका विचार विवेक पूर्वक शांत होकर कीजिए ।  
 तो सर्व आत्मिक-ज्ञान के सिद्धान्त का रस पीजिये ॥८ ॥  
 किसका वचन उस तत्त्व की उपलब्धि में शिवभूत है ।  
 निर्दोष नर का वचन रे ! वह स्वानुभूति प्रसूत है ॥९ ॥  
 तारो अहो तारो निजात्मा शीघ्र अनुभव कीजिये ।  
 सर्वात्म में समदृष्टि हो यह वच हृदय लख लीजिये ॥१० ॥

### छह सामान्यगुण

कर्ता जगत का मानता, जो कर्म या भगवान को ।  
 वह भूलता है लोक में अस्तित्व गुण के ज्ञान को ॥  
 उत्पाद-व्यययुत वस्तु है, फिर भी सदा ध्रुवता धरे ।  
 अस्तित्व गुण के योग से, कोई नहीं जग में मरे ॥१ ॥  
 वस्तुत्व गुण के योग से, हो द्रव्य में स्व-स्व क्रिया ।  
 स्वाधीन गुण-पर्याय का ही, पान द्रव्यों ने किया ॥  
 सामान्य और विशेषता से, कर रहे निज काम को ।  
 यों मानकर वस्तुत्व को, पाओ विमल शिवधाम को ॥२ ॥  
द्रव्यत्व गुण इस वस्तु को, जग में पलटता है सदा ।  
 लेकिन कभी भी द्रव्य तो, तजता न लक्षण सम्पदा ॥  
 स्वद्रव्य में मोक्षार्थी हो, स्वाधीन सुख लो सर्वदा ।  
 हो नाश जिससे आज तक की, दुःखदाई भवकथा ॥३ ॥



सब द्रव्य-गुण प्रमेय से, बनते विषय हैं ज्ञान के।  
 रुकता न सम्यग्ज्ञान पर से, जानियो यों ध्यान से ॥  
 आत्मा अरूपी ज्ञेय निज, यह ज्ञान उसको जानता।  
 है स्व-पर सत्ता विश्व में सुदृष्टि उनको जानता ॥४ ॥  
 यह गुण अगुरुलघु भी सदा, रखता महत्ता है महा।  
 गुण-द्रव्य को पररूप यह, होने न देता है अहा ॥  
 निजगुण-पर्यय सर्व ही, रहते सतत निज भाव में।  
 कर्ता न हर्ता अन्य कोई, यों लखो स्व-स्वभाव में ॥५ ॥  
प्रदेशत्व गुण की शक्ति से, आकार द्रव्य धरा करे।  
 निज क्षेत्र में व्यापक रहे, आकार भी पलटा करे ॥  
 आकार हैं सबके अलग, हो लीन अपने ज्ञान में।  
 जानों इन्हें सामान्यगुण, रक्खो सदा श्रद्धान में ॥६ ॥

### परमार्थ विंशतिका

राग-द्वेष की परिणति के वश, होते नाना भाँति विकार।  
 जीव मात्र ने उन भावों को, देखा सुना अनेकों बार ॥  
 किन्तु न जाना आत्मतत्त्व को, है अलभ्य सा उसका ज्ञान।  
 भव्यों से अभिवन्दित है नित, निर्मल यह चेतन भगवान ॥१ ॥  
 अन्तर्बाह्य विकल्प जाल से, रहित शुद्ध चैतन्य स्वरूप।  
 शान्त और कृत-कृत्य सर्वथा, दिव्य अनन्त चतुष्टय रूप ॥  
 छूती उसे न भय की ज्वाला, जो है समता रस में लीन।  
 वन्दनीय वह आत्म-स्वस्थता, हो जिससे आत्मिक सुख पीन ॥२ ॥  
 एक स्वच्छ एकत्व ओर भी, जाता है जब मेरा ध्यान।  
 वही ध्यान परमात्म तत्त्व का, करता कुछ आनन्द प्रदान ॥  
 शील और गुण युक्त बुद्धि जो, रहे एकता में कुछ काल।  
 हो प्रगटित आनन्द कला वह, जिसमें दर्शन ज्ञान विशाल ॥३ ॥  
 नहीं कार्य आश्रित मित्रों से, नहीं और इस जग से काम।  
 नहीं देह से नेह लेश अब, मुझे एकता में आराम ॥

विश्वचक्र में संयोगों वश, पाये मैंने अतिशय कष्ट ।  
 हुआ आज सबसे उदास मैं, मुझे एकता ही है इष्ट ॥४ ॥  
 जाने और देखता सबको, रहे तथा चैतन्य स्वरूप ।  
 श्रेष्ठ तत्त्व है वही विश्व में, उसी रूप मैं नहिं पररूप ॥  
 राग द्वेष तन मन क्रोधादिक, सदा सर्वथा कर्मोत्पन्न ।  
 शत-शत शास्त्रश्रवण कर मैंने, किया यही दृढ़ यह सब भिन्न ॥५ ॥  
 दुष्काल अब शक्ति हीन तनु, सहे नहीं परीषह का भार ।  
 दिन-दिन बढ़ती है निर्बलता, नहीं तीव्र तप पर अधिकार ॥  
 नहीं कोई दिखता है अतिशय, दुष्कर्मों से पाऊँ त्रास ।  
 इन सबसे क्या मुझे प्रयोजन, आत्मतत्त्व का है विश्वास ॥६ ॥  
 दर्शन ज्ञान परम सुखमय मैं, निज स्वरूप से हूँ द्युतिमान ।  
 विद्यमान कर्मों से भी है, भिन्न शुद्ध चेतन भगवान ॥  
 कृष्ण वस्तु की परम निकटता, बतलाती मणि को सविकार ।  
 शुद्ध दृष्टि से जब विलोकते, मणि स्वरूप तब तो अविकार ॥७ ॥  
 राग- द्वेष वर्णादि भाव सब, सदा अचेतन के हैं भाव ।  
 हो सकते वे नहीं कभी भी, शुद्ध पुरुष के आत्मस्वभाव ॥  
 तत्त्व-दृष्टि हो अन्तरंग में, जो विलोकता स्वच्छ स्वरूप ।  
 दिखता उसको परभावों से, रहित एक निज शुद्ध स्वरूप ॥८ ॥  
 पर पदार्थ के इष्टयोग को, साधु समझते हैं आपत्ति ।  
 धनिकों के संगम को समझें, मन में भारी दुःखद विपत्ति ॥  
 धन मदिरा के तीव्रपान से, जो भूपति उन्मत्त महान ।  
 उनका तनिक समागम भी तो, लगता मुनि को मरण समान ॥९ ॥  
 सुखदायक गुरुदेव वचन जो, मेरे मन में करें प्रकाश ।  
 फिर मुझको यह विश्व शत्रु बन, भले सतत दे नाना त्रास ॥  
 दे न जगत भोजन तक मुझको, हो न पास में मेरे वित्त ।  
 देख नग्न उपहास करें जन, तो भी दुःखित नहीं हो चित्त ॥१० ॥  
 दुःख व्याल से पूरित भव वन, हिंसा अघट्टुम जहाँ अपार ।  
 ठौर-ठौर दुर्गति-पल्लीपति, वहाँ भ्रमे यह प्राणि अपार ॥

सुगुरु प्रकाशित दिव्य पंथ में, गमन करे जो आप मनुष्य ।  
 अनुपम-निश्चल मोक्षसौख्य को, पा लेता वह त्वरित अवश्य ॥११ ॥  
 साता और असाता दोनों कर्म और उसके हैं काज ।  
 इसीलिए शुद्धात्म तत्त्व से, भिन्न उन्हें माने मुनिराज ॥  
 भेद भावना में ही जिनका, रात-दिवस रहता है वास ।  
 सुख-दुःख जन्य विकल्प कहाँ से, रहते ऐसे भवि के पास ॥१२ ॥  
 देव और प्रतिमा पूजन का, भक्ति भाव सह रहता ध्यान ।  
 सुनें शास्त्र गुरुजन को पूजें, जब तक है व्यवहार प्रधान ॥  
 निश्चय से समता से निज में, हुई लीन जो बुद्धि विशिष्ट ।  
 वही हमारा तेज पुंजमय, आत्मतत्त्व सबसे उत्कृष्ट ॥१३ ॥  
 वर्षा हरे हर्ष को मेरे, दे तुषार तन को भी त्रास ।  
 तपे सूर्य मेरे मस्तक पर, काटें मुझको मच्छर डांस ॥  
 आकर के उपसर्ग भले ही, कर दें इस काया का पात ।  
 नहीं किसी से भय है मुझको, जब मन में है तेरी बात ॥१४ ॥  
 मुख्य आँख इन्द्रिय कर्षकमय, ग्राम सर्वथा मृतक समान ।  
 रागादिक कृषि से चेतन को, भिन्न जानना सम्यक्ज्ञान ॥  
 जो कुछ होना हो सो होगा, करूँ व्यर्थ ही क्यों मैं कष्ट ?  
 विषयों की आशा तज करके, आराधूँ मैं अपना इष्ट ॥१५ ॥  
 कर्मों के क्षय से उपशम से, अथवा गुरु का पा उपदेश ।  
 बनकर आत्मतत्त्व का ज्ञाता, छोड़े जो ममता निःशेष ॥  
 करे निरन्तर आत्म-भावना, हों न दुःखों से जो संतप्त ।  
 ऐसा साधु पाप से जग में, कमलपत्र सम हो नहीं लिप्त ॥१६ ॥  
 गुरु करुणा से मुक्ति प्राप्ति के, लिए बना हूँ मैं निर्ग्रन्थ ।  
 उसके सुख से इन्द्रिय सुख को, माने चित्त दुःख का पंथ ॥  
 अपनी भूल विवश नर तब तक, लेता रहा खली का स्वाद ।  
 जब तक उसे स्वच्छ मधु रसमय, नहीं शर्करा का हो स्वाद ॥१७ ॥  
 ध्यानाश्रित निर्ग्रन्थ भाव से, मुझे हुआ है जो आनन्द ।  
 दुर्ध्यानाक्ष सुखों का तो फिर, कैसे करे स्मरण मतिमन्द ?

ऐसा कौन मनुज है जग में, तज करके जो जलता गेह ।  
 छोड़ वापिका का शीतल जल, पड़े अग्नि में आप सनेह ॥१८ ॥  
 मोह जन्य मोक्षाभिलाषि भी, करे मोक्ष का स्वयं विरोध ।  
 अन्य द्रव्य की करें न इच्छा, जिन्हें तत्त्व का है शुभ बोध ॥  
 आलोचन में दत्तचित्त नित, शुद्ध आत्म का जिन्हें विचार ।  
 तत्त्वज्ञान में तत्पर मुनिजन, ग्रहें नहीं ममता का भार ॥१९ ॥  
 इस निर्मल चेतन के सुख का, जिस क्षण आता है आस्वाद ।  
 विषय नष्ट होते सारे तब, रस समस्त लगते निस्वाद ॥  
 होती दूर देह की ममता, मन वाणी हो जाते मौन ।  
 गोष्ठी कथा, कुतूहल छूटें, उस सुख को नर जाने कौन ॥२० ॥  
 वदनातीत, पक्षच्युत सुन्दर निश्चय नय से है यह तत्त्व ।  
 व्यवहति पथ में प्राप्त शिष्य, वचनों द्वारा समझें आत्मत्व ॥  
 करूँ तत्त्व का दिव्य कथन मैं, नहीं यहाँ वह शक्ति समृद्धि ।  
 जान अशक्त आपको इसमें, मौन रहे मुझसा जड़ बुद्धि ॥२१ ॥

### आत्म सम्बोधन ( वैराग्यभावना )

हे चेतन ! तुम शान्तचित्त हो, क्यों न करो कुछ आत्मविचार ।  
 पुनः पुनः मिलना दुर्लभ है, मोक्ष योग्य मानव अवतार ॥  
 भव विकराल भ्रमण में तुझको, हुई नहीं निजतत्त्व प्रतीति ।  
 छूटी नहीं अन्य द्रव्यों से, इस कारण से मिथ्या प्रीति ॥१ ॥  
 संयोगों में दत्त चित्त हो, भूला तू अपने को आप ।  
 होने को ही सुखी निरन्तर, करता रहता अगणित पाप ॥  
 सहने को तैयार नहीं जब, अपने पापों का परिणाम ।  
 त्याग उन्हें दृढ़ होकर मन में, कर स्वधर्म में ही विश्राम ॥२ ॥  
 सत्य सौख्य का तुझे कभी भी, आता है क्या कुछ भी ध्यान ।  
 विषयजन्य उस सुखाभास को, मान रहा है सौख्य महान ॥  
 भवसुख के ही लिए सर्वथा, करता रहता यत्न अनेक ।  
 जान-बूझकर फंसता दुःख में, भुला विमल चैतन्य विवेक ॥३ ॥

मान कभी धन को सुख साधन, उसे जुटाता कर श्रम घोर ।  
 मलता रह जाता हाथों को, उसे चुरा लेते जब चोर ॥  
 आत्मशान्ति मिलती कब धन से, चिन्ताओं का है वह गेह ।  
 होने देता नहीं तनिक भी, मोक्ष साधनों से शुभ नेह ॥४ ॥  
 दुग्धपान से ज्यों सर्पों में, होता अधिक गरल विस्तार ।  
 धन संचय से त्यों बढ़ते हैं, कभी-कभी मन में कुविचार ॥  
 इसकी वृद्धि कभी मानव को, अहो बना देती है अन्ध ।  
 दुखिया से मिलने में इसको, आती हाय! महा दुर्गन्ध ॥५ ॥  
 हे चेतन धन की ममता वश, भोगे तुमने कष्ट अपार ।  
 देखो अपने अमर द्रव्य को, जहाँ सौख्य का पारावार ॥  
 देवों का वैभव भी तुमको, करना पड़ा अन्त में त्याग ।  
 तो अब प्रभु के पदपंकज में, बनकर भ्रमर करो शुभ राग ॥६ ॥  
 इन्द्र-भवन से बनवाता है, सुख के लिए बड़े प्रासाद ।  
 क्या तेरे यह संग चलेंगे, इसको भी तू करना याद ॥  
 इस तन में से जिस दिन चेतन, कर जायेगा आप प्रयाण ।  
 जाना होगा उस घर से ही, तन को बिना रोक शमशान ॥७ ॥  
 अपना-अपना मान जिन्हें तू, खिला-पिलाकर करता पुष्ट ।  
 अवसर मिलने पर वे ही जन, करते तेरा महा-अनिष्ट ॥  
 ऐसी-ऐसी घटनाओं से, भरे हुए इतिहास पुराण ।  
 पढ़कर सुनकर नहीं समझता, यही एक आश्चर्य महान ॥८ ॥  
 क्षण-क्षण करके नित्य निरन्तर, जाता है जीवन का काल ।  
 करता नहीं किन्तु यह चेतन, क्षण भर भी अपनी सम्भाल ॥  
 दुःख इसे देता रहता है, इसका ही भीषण अज्ञान ।  
 सत्पुरुषों से रहे विमुख नित, प्रगटे लेश न सम्यग्ज्ञान ॥९ ॥  
 मिला तुझे है मानव का भव, कर सत्त्वर ऐसा सदुपाय ।  
 मिले सौख्यनिधि अपनी उत्तम, जनम-मरण का दुख टल जाय ॥

सुखप्रद वही एक है जीवन, जहाँ स्वच्छ है तत्त्व प्रधान ।  
 बाकी मनुजों का तो जीवन, सचमुच ही है मृतक समान ॥१० ॥  
 सुखदायक क्या हुए किसी को, जगती में ये भीषण भोग ।  
 अहि समान विकराल सर्वथा, जीवों को इनका संयोग ॥  
 छली मित्र सम ऊपर से ये, दिखते हैं सुन्दर अत्यन्त ।  
 पर इनकी रुचि मात्र विश्व में, कर देती जीवन का अन्त ॥११ ॥  
 स्पर्शन इन्द्रिय के वश ही, देखो वनगज भी बलवान ।  
 पड़कर के बन्धन में सहसा, सहता अविरल कष्ट महान ॥  
 मरती स्वयं पाश में फँसकर, रसनासक्त चपल जलमीन ।  
 सुध-बुध खो देता है अपनी, भ्रमर कमल में होकर लीन ॥१२ ॥  
 दीपक पर पड़कर पंतग भी, देता चक्षु विवश निज प्राण ।  
 सुनकर हिंसक-शब्द मनोहर, रहता नहीं हिरन को ध्यान ॥  
 एक विषय में लीन जीव जब, पाता इतने कष्ट अपार ।  
 पाँच इन्द्रियों के विषयों में, लीन सहेगा कितनी मार ॥१३ ॥  
 जनम-जनम में की है चेतन, तूने सुख की ही अभिलाष ।  
 हुआ नहीं फिर भी किञ्चित् कम, अब तक भी तेरा भववास ॥  
 त्रिविध ताप से जलता रहता, अन्तरात्मा है दिन-रात ।  
 कर सत्वर पुरुषार्थ सत्य तू, जग प्रपञ्च में देकर लात ॥१४ ॥  
 रोगों का जिसमें निवास है, अशुचि पिण्ड ही है यह देह ।  
 देख कौन सी इसमें सुषमा, करता है तू इस पर नेह ॥  
 तेरे पीछे लगा हुआ है, हा! अनादि का मोह पिशाच ।  
 छुड़ा स्वच्छ रत्नों को प्रतिपल, ग्रहण कराता रहता काँच ॥१५ ॥  
 भूल आप को क्षणिक देह में, तुझे हुआ जो राग अपार ।  
 बढ़ता रहता राग-द्वेष से, महादुःखद तेरा संसार ॥  
 त्याग देह की ममता सारी, सुद्गुरुओं के चरण उपास ।  
 तो छूटेगा यहाँ सहज में, तेरा दुखदायी भवपाश ॥१६ ॥

जड़ तन में आत्मत्वबुद्धि ही, सकल दुखों का है दृढमूल ।  
देहाश्रित भावों को अपना, मान भयंकर करता भूल ॥  
जो-जो तन मिलता है तुझको, उसी रूप बन जाता आप ।  
फिर उसके परिवर्तन को लख, होता है तुझको संताप ॥१७ ॥  
हो विरक्त तू भव भोगों से, ले श्री जिनवर का आधार ।  
रहकर सत्सङ्गति में निशदिन, कर उत्तम निजतत्त्व-विचार ॥  
निज विचार बिन इन कष्टों का, होगा नहीं कभी भी अन्त ।  
दुःख का हो जब नाश सर्वथा, विकसित हो तब सौख्य बसंत ॥१८ ॥  
बिन कारण ही अन्य प्राणियों पर, करता रहता है रोष ।  
‘मैं महान’ कर गर्व निरन्तर, मन में धरता है सन्तोष ॥  
बना रहा जीवन जगती में, यह मानव बन कपट प्रधान ।  
निज का वैभव तनिक न देखा, पर का कीना लोभ निदान ॥१९ ॥  
कर्मबन्ध होता कषाय से, करो प्रथम इनका संहार ।  
राग-द्वेष की ही परिणति से, होता है विस्तृत संसार ॥  
दुःख की छाया में बैठे हैं, मिलकर भू पर रंक नरेश ।  
प्रगट किसी का दुख दिखता है, और किसी के मन में क्लेश ॥२० ॥  
जिन्हें समझता सुख निधान तू, पूछ उन्हीं से मन की बात ।  
कर निर्धार सौख्य का सत्वर, करो मोह राजा का घात ।  
जिन्हें मानता तू सुखदायक, मिली कौन-सी उनसे शान्ति ।  
दुख में होती रही सहायक, दिन दूनी तेरी ही भ्रान्ति ॥२१ ॥  
कर केवल अब आत्मभावना, पर-विषयों से मुख को मोड़ ।  
मोक्षसाधना में निजमन को, तज विकल्प पर निशदिन जोड़ ॥  
कर्म और उसके फल से भी, भिन्न एक अपने को जान ।  
सिद्धसदृश अपने स्वरूप का, कर चेतन दृढतम श्रद्धान ॥२२ ॥  
तूने अपने ही हाथों से, बिछा लिया है भीषण जाल ।  
नहीं छूटता है अब उससे, ममता वश सारा जंजाल ॥  
छोड़े बिना नहीं पावेगा, कभी शान्ति का नाम निशान ।  
परम शान्ति के लिए अलौकिक, कर अब तू बोधामृत पान ॥२३ ॥

शत्रु मित्र की छोड़ कल्पना, सुख-दुख में रख समता भाव ।  
 रत्न और तृण में रख समता, जान वस्तु का अचल स्वभाव ॥  
 निन्दा सुनकर दुखित न हो तू, यशोगान सुन हो न प्रसन्न ।  
 मरण और जीवन में सम हो, जगत इन्द्र सब ही हैं भिन्न ॥२४ ॥  
 इस संसार भ्रमण में चेतन, हुआ भूप कितनी ही बार ।  
 क्षीण पुण्य होते ही तू तो, हुआ कीट भी अगणित बार ॥  
 प्राप्त दिव्य मानव जीवन में, कर न कभी तू लेश ममत्व ।  
 करके दूर चित्त अस्थिरता, समझ सदा अपना अपनत्व ॥२५ ॥  
 पर गुण-पर्यायों में चेतन, त्यागो तुम अब अपनी दौड़ ।  
 कर विचार शुचि आत्मद्रव्य का, परपरिणति से मुख को मोड़ ॥  
 एक शुद्ध चेतन अपना ही, ग्रहण योग्य है जग में सार ।  
 शान्तचित्त हो पर-पुद्गल से, हटा शीघ्र अपना अधिकार ॥२६ ॥

### वैराग्य पच्चीसिकां

रागादिक दूषण तजे, वैरागी जिनदेव ।  
 मन वच शीश नवाय के, कीजे तिनकी सेव ॥१ ॥  
 जगत मूल यह राग है, मुक्ति मूल वैराग ।  
 मूल दुहुन को यह कह्यो, जाग सकै तो जाग ॥२ ॥  
 क्रोध मान माया धरत, लोभ सहित परिणाम ।  
 ये ही तेरे शत्रु हैं, समझो आतम राम ॥३ ॥  
 इनहीं चारों शत्रु को, जो जीते जग मांहि ।  
 सो पावहिं पथ मोक्ष को, यामें धोखो नांहि ॥४ ॥  
 जा लक्ष्मी के काज तू, खोवत है निज धर्म ।  
 सो लक्ष्मी संग ना चले, काहे भूलत मर्म ॥५ ॥  
 जा कुटुम्ब के हेत तू, करत अनेक उपाय ।  
 सो कुटुम्ब अगनी लगा, तोकों देत जराय ॥६ ॥  
 पोषत है जा देह को, जोग त्रिविध के लाय ।  
 सो तोकों छिन एक में, दगा देय खिर जाय ॥७ ॥



लक्ष्मी साथ न अनुसरै, देह चले नहिं संग ।  
 काढ़-काढ़ सुजनहिं करें, देख जगत के रंग ॥८ ॥  
 दुर्लभ दस दृष्टान्त सम, सो नरभव तुम पाय ।  
 विषय सुखन के कारने, सर्वस चले गमाय ॥९ ॥  
 जगहिं फिरत कई युग भये, सो कछु कियो विचार ।  
 चेतन अब तो चेतहू, नरभव लहि अतिसार ॥१० ॥  
 ऐसे मति विभ्रम भई, विषयनि लागत धाय ।  
 कै दिन कै छिन कै घरी, यह सुख थिर ठहराय ॥११ ॥  
 पी तो सुधा स्वभाव की, जी तो कहूँ सुनाय ।  
 तू रीतो क्यों जातु है, वीतो नरभव जाय ॥१२ ॥  
 मिथ्यादृष्टि निकृष्ट अति, लखै न इष्ट अनिष्ट ।  
 भ्रष्ट करत है शिष्ट को, शुद्ध दृष्टि दे पिष्ट ॥१३ ॥  
 चेतन कर्म उपाधि तज, राग-द्वेष को संग ।  
 ज्यों प्रगटे परमात्मा, शिव सुख होय अभंग ॥१४ ॥  
 ब्रह्म कहूँ तो मैं नहीं, क्षत्री हूँ पुनि नाहिं ।  
 वैश्य शूद्र दोऊ नहीं, चिदानन्द हूँ माहिं ॥१५ ॥  
 जो देखै इहि नैन सों, सो सब बिनस्यो जाय ।  
 तासों जो अपनौ कहे, सो मूरख शिर राय ॥१६ ॥  
 पुद्गल को जो रूप है, उपजे विनसै सोय ।  
 जो अविनाशी आतमा, सो कछु और न होय ॥१७ ॥  
 देख अवस्था गर्भ की, कौन-कौन दुख होहिं ।  
 बहुरि मगन संसार में, सो लानत है तोहि ॥१८ ॥  
 अधो शीश ऊरध चरन, कौन अशुचि आहार ।  
 थोरे दिन की बात यह, भूल जात संसार ॥१९ ॥  
 अस्थि चर्म मल मूत्र में, रैन दिना को वास ।  
 देखे दृष्टि घिनावनो, तऊ न होय उदास ॥२० ॥  
 रोगादिक पीड़ित रहे, महा कष्ट जो होय ।  
 तबहू मूरख जीव यह, धर्म न चिन्तै कोय ॥२१ ॥

मरन समै विललात है, कोऊ लेहु बचाय ।  
 जाने ज्यों-त्यों जीजिये, जोर न कछु बसाय ॥२२ ॥  
 फिर नरभव मिलिवो नहीं, किये हु कोट उपाय ।  
 तातें बेगहिं चेतहू, अहो जगत के राय ॥२३ ॥  
 'भैया' की यह बीनती, चेतन चितहिं विचार ।  
 ज्ञान दर्श चारित्र में, आपो लेहु निहार ॥२४ ॥  
 एक सात पंचास को, संवत्सर सुखकार ।  
 पक्ष सुकल तिथिधर्म की जैजै निशिपतिवार ॥२५ ॥

### बारह भावना

जेती जगत में वस्तु तेती अथिर परिणमती सदा ।  
 परिणमन राखन नाहिं समरथ इन्द्र चक्री मुनि कदा ॥  
 सुत नारि यौवन और तन धन जानि दामिनि दमक सा ।  
 ममता न कीजे धारि समता मानि जल में नमक सा ॥१ ॥  
 चेतन अचेतन सब परिग्रह हुआ अपनी थिति लहै ।  
 सो रहै आप करार माफिक अधिक राखे ना रहै ॥  
 अब शरण काकी लेयगा जब इन्द्र नाहीं रहत हैं ।  
 शरण तो इक धर्म आतम याहि मुनिजन गहत हैं ॥२ ॥  
 सुर नर नरक पशु सकल हेरे, कर्म चरे बन रहे ।  
 सुख शासता, नहिं भासता, सब विपति अति में सन रहे ॥  
 दुःख मानसी तो देवगति में, नारकी दुःख ही भरै ।  
 तिर्यच मनुज वियोग रोगी शोक संकट में जरै ॥३ ॥  
 क्यों भूलता, शठ फूलता है देख परिकर थोक को ।  
 लाया कहाँ ले जायगा क्या फौज भूषण रोक को ॥  
 जनमत मरत तुझ एकले को काल केता हो गया ।  
 संग और नाहीं लगे तेरे सीख मेरी सुन भया ॥४ ॥  
 इन्द्रीन तैं जाना न जावै तू चिदानन्द अलक्ष है ।  
 स्वसंवेदन करत अनुभव होत तब प्रत्यक्ष है ॥

तन अन्य जड़ जानो सरूपी तू अरूपी सत्य है ।  
 कर भेदज्ञान सो ध्यान धर निज और बात असत्य है ॥५ ॥  
 क्या देख राचा फिरै नाचा रूप सुन्दर तन लहा ।  
 मल मूत्र भाण्डा भरा गाढ़ा तू न जानै भ्रम गहा ॥  
 क्यों सूग नाहीं लेत आतुर क्यों न चातुरता धरै ।  
 तुहि काल गटकै नाहिं अटकै छोड़ तुझको गिर परै ॥६ ॥  
 कोई खरा कोई बुरा नहिं, वस्तु विविध स्वभाव है ।  
 तू वृथा विकल्प ठान उर में करत राग उपाव है ॥  
 यूँ भाव आस्रव बनत तू ही द्रव्य आस्रव सुन कथा ।  
 तुझ हेतु से पुद्गल करम बन निमित्त हो देते व्यथा ॥७ ॥  
 तन भोग जगत सरूप लख डर भविक गुरु शरणा लिया ।  
 सुन धर्म धारा भर्म गारा हर्षि रुचि सन्मुख भया ॥  
 इन्द्री अनिन्द्री दाबि लीनी त्रस रु थावर बन्ध तजा ।  
 तब कर्म आस्रव द्वार रोकै ध्यान निज मैं जा सजा ॥८ ॥  
 तज शल्य तीनों बरत लीनो बाह्यभ्यंतर तप तपा ।  
 उपसर्ग सुर-नर-जड़-पशू-कृत सहा निज आतम जपा ॥  
 तब कर्म रस बिन होन लागे द्रव्य भावन निर्जरा ।  
 सब कर्म हरकै मोक्ष वरकै रहत चेतन ऊजरा ॥९ ॥  
 विच लोकनन्ता लोक माँही लोक में सब द्रव भरा ।  
 सब भिन्न भिन्न अनादि रचना निमित्त कारण की धरा ॥  
 जिनदेव भाषा तिन प्रकाशा भर्म नाशा सुन गिरा ।  
 सुर मनुष तिर्यक् नारकी हुई ऊर्ध्व मध्य अधो धरा ॥१० ॥  
 अनन्तकाल निगोद अटका निकस थावर तन धरा ।  
 भू वारि तेज बयार है कै बेइन्द्रिय त्रस अवतरा ॥  
 फिर हो तिइन्द्री वा चौइन्द्री पंचेन्द्री मन बिन बना ।  
 मनयुत मनुष गति हो न दुर्लभ ज्ञान अति दुर्लभ घना ॥११ ॥  
 जिय न्हान धोना तीर्थ जाना धर्म नाहीं जप जपा ।  
 तन नग्न रहना धर्म नाहीं धर्म नाहीं तप तपा ॥

वर धर्म निज आत्म स्वभावी ताहि बिन सब निष्फला ।  
 'बुधजन' धरम निजधार लीना तिनहिं कीना सब भला ॥१२ ॥

( दोहा )

अथिराशरण संसार है, एकत्व अन्यत्वहि जान ।  
 अशुचि आस्रव संवरा, निर्जर लोक बखान ॥१३ ॥  
 बोधरु दुर्लभ धर्म ये, बारह भावन जान ।  
 इनको भावै जो सदा, क्यों न लहै निर्वान ॥१४ ॥

**बारह भावना**

( दोहा )

निज स्वभाव की दृष्टि धर, बारह भावन भाय ।  
 माता है वैराग्य की, चिन्तत सुख प्रकटाय ॥  
 मैं आत्मा नित्य स्वभावी हूँ, ना क्षणिक पदार्थों से नाता ।  
 संयोग शरीर कर्म रागादिक, क्षणभंगुर जानो भ्राता ॥  
 इनका विश्वास नहीं चेतन, अब तो निज की पहिचान करो ।  
 निज ध्रुव स्वभाव के आश्रय से ही, जन्मजरामृत रोग हरो ॥१ ॥  
 जो पाप बन्ध के हैं निमित्त, वे लौकिक जन तो शरण नहीं ।  
 पर सच्चे देव-शास्त्र-गुरु भी, अवलम्बन हैं व्यवहार सही ॥  
 निश्चय से वे भी भिन्न अहो ! उन सम निज लक्ष्य करो आत्मन् ।  
 निज शाश्वत ज्ञायक ध्रुव स्वभाव ही, एक मात्र है अवलम्बन ॥२ ॥  
 ये बाह्य लोक संसार नहीं, ये तो मुझ सम सत् द्रव्य अरे ।  
 नहिं किसी ने मुझको दुःख दिया, नहिं कोई मुझको सुखी करे ॥  
 निज मोह राग अरु द्वेष भाव से, दुख अनुभूति की अबतक ।  
 अतएव भाव संसार तजूँ, अरु भोगूँ सच्चा सुख अविचल ॥३ ॥  
 मैं एक शुद्ध निर्मल अखण्ड, पर से न हुआ एकत्व कभी ।  
 जिनको निज मान लिया मैंने, वे भी तो पर प्रत्यक्ष सभी ॥  
 नहीं स्व-स्वामी सम्बन्ध बने, माना वह भूल रही मेरी ।  
 निज में एकत्व मान कर के, अब मेटूँगा भव-भव फेरी ॥४ ॥

जो भिन्न चतुष्टय वाले हैं, अत्यन्ताभाव सदा उनमें ।  
 गुण पर्यय में अन्यत्व अरे, प्रदेशभेद नहिं है जिनमें ॥  
 इस सम्बन्धी विपरीत मान्यता से, संसार बढ़ाया है ।  
 निज तत्त्व समझ में आने से, समरस निज में ही पाया है ॥५ ॥  
 है ज्ञानदेह पावन मेरी, जड़देह राग के योग्य नहीं ।  
 यह तो मलमय मल से उपजी, मल तो सुखदायी कभी नहीं ॥  
 भो आत्मन् श्री गुरु ने, रागादिक को अशुचि अपवित्र कहा ।  
 अब इनसे भिन्न परम पावन, निज ज्ञानस्वरूप निहार अहा ॥६ ॥  
 मिथ्यात्व कषाय योग द्वारा, कर्मों को नित्य बुलाया है ।  
 शुभ-अशुभ भाव क्रिया द्वारा, नित दुख का जाल बिछाया है ॥  
 पिछले कर्मोदय में जुड़कर, कर्मों को ही छोड़ा बाँधा ।  
 ना ज्ञाता-दृष्टा मात्र रहा, अब तक शिवमार्ग नहीं साधा ॥७ ॥  
 मिथ्यात्व अभी सत् श्रद्धा से, व्रत से अविरति का नाश करूँ ।  
 मैं सावधान निज में रहकर, नि कषाय भाव उद्योत करूँ ॥  
 शुभ-अशुभ योग से भिन्न, आत्म में निष्कम्पित हो जाऊँगा ।  
 संवरमय ज्ञायक आश्रय कर, नव कर्म नहीं अपनाऊँगा ॥८ ॥  
 नव आस्रव पूर्वक कर्म तजे, इससे बन्धन न नष्ट हुआ ।  
 अब कर्मोदय को ना देखूँ, ज्ञानी से यही विवेक मिला ॥  
 इच्छा उत्पन्न नहीं होवें, बस कर्म स्वयं झड़ जावेंगे ॥  
 जब किञ्चित नहीं विभाव रहें, गुण स्वयं प्रगट हो जावेंगे ॥९ ॥  
 परिवर्तन पंच अनेक किये, सम्पूर्ण लोक में भ्रमण किया ।  
 ना कोई क्षेत्र रहा ऐसा, जिस पर ना हमने जन्म लिया ॥  
 नरकों स्वर्गों में घूम चुका, अतएव आश सबकी छोड़ूँ ।  
 लोकाग्र शिखर पर थिर होऊँ, बस निज में ही निज को जोड़ूँ ॥१० ॥  
 सामग्री सभी सुलभ जग में, बहु बार मिली छूटी मुझसे ।  
 कल्याणमूल रत्नत्रय परिणति, अब तक दूर रही मुझसे ॥

इसलिए न सुख का लेश मिला, पर मैं चिरकाल गँवाया है ।  
 सद्बोधि हेतु पुरुषार्थ करूँ, अब उत्तम अवसर पाया है ॥११ ॥  
 शुभ-अशुभ कषायों रहित होय, सम्यक्चारित्र प्रगटाऊँगा ।  
 बस निज स्वभाव साधन द्वारा, निर्मल अनर्घ्यपद पाऊँगा ॥  
 माला तो बहुत जपी अब तक, अब निज में निज का ध्यान धरूँ ।  
 कारण परमात्मा अब भी हूँ, पर्यय में प्रभुता प्रकट करूँ ॥१२ ॥

(दोहा)

ध्रुव स्वभाव सुखरूप है, उसको ध्याऊँ आज ।  
 दुखमय राग विनष्ट हो, पाऊँ सिद्ध समाज ॥

## बाईस परीषह

(चौपाई)

विषयारम्भ परिग्रह त्यागी, ज्ञान-ध्यान में परिणति पागी ।  
 वे मुनिवर सबको सुखदाई, परीषह जय की करूँ बड़ाई ॥

### १. क्षुधा परीषह

भूख लगे आहार न पाय, अनाहारी चिद्रूप लखाय ।  
 ज्ञानामृत भोजी मुनिराय, सहें परीषह शिवसुखदाय ॥

### २. तृषा परीषह

तृषा सतावे कोपे पित्त, नहीं दीनता लावें चित्त ।  
 भेदज्ञान करते मुनिराय, समता रस से तृप्त रहाय ॥

### ३. क्षुधा परीषह

अस्पर्शी ज्ञायक भगवान, ध्यावें साधु परम सुखदान ।  
 शीत परीषह से नहीं डरें, निरावरण निर्भय नित रहें ॥

### ४. उष्ण परीषह

रहते आत्म गुफा के माँहि, मोह ताप जिनके उर नाहिं ।  
 सहज शान्त समता के धनी, उष्ण परीषह जीतें मुनी ॥

५. डंसमश्क परीषह

डंसमश्क जब तन में लगें, ज्ञानरूप में मुनिवर पगें ।  
वहे ज्ञानधारा उर माँहि, परीषह में उपयोग सु नाहिं ॥

६. नग्न परीषह

निर्विकार शोभे परिणाम, यथाजात तनरूप ललाम ।  
ध्यावें अपने को अशरीर, नग्न परीषह जीतें वीर ॥

७. अरति परीषह

पापोदय का कार्य विचार, वर्ते सहजहि जाननहार ।  
अरति तजै संयम दृढ़ रहैं, ते मुनि कर्म कालिमा दहैं ॥

८. स्त्री परीषह

स्वानुभूति रमणी में तृप्त, करे न नारी चित्त संतप्त ।  
ब्रह्मचर्य से चिगें न लेश, परमधीर मुनिवर जगतेश ॥

९. चर्या परीषह

अनियत वासी करैं विहार, ईर्या समिति सहित अविकार ।  
चर्या परीषह सों नहिं डरें, मुक्तिमार्ग जग में विस्तरें ॥

१०. आसन परीषह

अंतर समता से नहीं चिगें, बाहर आसन से नहिं डिगें ।  
धनि मर्यादा पालनहार, धर्मतीर्थ विस्तारनहार ॥

११. शयन परीषह

भूमि काष्ठ पाषाण पै सोवें, सावधान नहिं गाफिल होवें ।  
निद्रा अल्प न करवट फेरें, अन्तर्मुख हो निजपद हेरें ॥

१२. आक्रोश परीषह

सुन दुर्वचन क्षमा उर लावें, ज्ञानी मुनि आक्रोश न आवे ।  
धन्य-धन्य सबके उपकारी, वन्दनीय चैतन्य-विहारी ॥

१३. वध-बंधन परीषह

पापोदय में कोई मारे, बांधे अग्नि में परजारे ।  
तहाँ तपोधन क्षोभ न करते, ध्यान विपाक-विचय वे करते ॥

## १४. याचना परीषह

निज में ही संतुष्ट यतीश्वर, पर की चाह न करते गुरुवर ।  
नहीं औषधि भी वे याचें, परम विरक्त शान्त रस राचें ॥

## १५. अलाभ परीषह

पर से लाभ न हानि मानें, सहज पूर्ण प्रभुता पहिचानें ।  
पर-अलाभ प्रति सहज उपेक्षा, भावें वे द्वादश अनुप्रेक्षा ॥

## १६. रोग परीषह

रोगादिक देहाश्रित जानें, कायर होकर दुःख नहिं मानें ।  
तप से कर्म निर्जरित करते, क्लेश जगत के भी वे हरते ॥

## १७. तृणस्पर्श परीषह

काँटे आदि पैर में लगते, उड़कर आँखों में भी चुभते ।  
फिर भी पर सहाय नहीं चाहें, सहज ज्ञानसिन्धु अवगाहें ॥

## १८. मल परीषह

आजीवन स्नान न करते, मलिन देह को भिन्न सु लखते ।  
निर्मल आतम सदा निहारें, निर्मल सहज परिणति धारें ॥

## १९. सत्कार-पुरस्कार परीषह

नहीं सत्कार चाहें मुनि ज्ञानी, निज-पर रीति भिन्न पहिचानी ।  
तिरस्कार नहीं करें किसी का, प्रभुतारूप लखें सब ही का ॥

## २०. प्रज्ञा परीषह

ज्ञान विशिष्ट उग्र तप धारें, वादी देख हार स्वीकारें ।  
महा विनय मुनि तदपि सु धारें, निज रत्नत्रय निधि विस्तारें ॥

## २१. अज्ञान परीषह

जब क्षयोपशम मंद जु होवे, शक्ति ज्ञान विशेष न होवे ।  
भेदज्ञान से सुतप बढ़ावें, सहज पूर्ण शुद्धातम ध्यावें ॥

## २२. अदर्शन परीषह

जो ऋद्धि अतिशय नहीं होवें, तो भी निज श्रद्धा नहीं खोवें ।  
तत्त्व विचार सहज ही करते, शुद्ध स्वरूप चित्त में धरते ॥



ऐसे मुनिवर को शिर नावें, साक्षात् दर्शन कब पावें ।  
 यही भाव मन माँहीं आवे, धनि निर्ग्रन्थ दशा प्रगटावें ॥  
 विषयों की अब नहीं कामना, शाश्वत पद की करूँ साधना ।  
 निजानन्द में तृप्त रहूँ मैं, अक्षय प्रभुता प्रगट करूँ मैं ॥

### अपूर्व अवसर

आवे कब अपूर्व अवसर जब, बाह्यान्तर होऊँ निर्ग्रन्थ ।  
 सब सम्बन्धों के बन्धन तज, विचरूँ महत् पुरुष के पंथ ॥१ ॥  
 सर्व भाव से उदासीन हो, भोजन भी संयम के हेतु ।  
 किञ्चित् ममता नहीं देह से, कार्य सभी हों मुक्ती सेतु ॥२ ॥  
 प्रगट ज्ञान मिथ्यात्व रहित से, दीखे आत्म काय से भिन्न ।  
 चरितमोह भी दूर भगाऊँ, निज स्वभाव का ध्यान अछिन्न ॥३ ॥  
 जब तक देह रहे तब तक भी, रहूँ त्रिधा मैं निज में लीन ।  
 घोर परीषह उपसर्गों से, ध्यान न होवे मेरा क्षीण ॥४ ॥  
 संयम हेतु योग प्रवर्तन, लक्ष्य स्वरूप जिनाज्ञाधीन ।  
 क्षण-क्षण चिन्तन घटता जावे, होऊँ अन्त ज्ञान में लीन ॥५ ॥  
 रागद्वेष ना हो विषयों में, अप्रमत्त अक्षोभ सदैव ।  
 द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव से, विचरण हो निरपेक्षित एव ॥६ ॥  
 क्रोध प्रति मैं क्षमा संभारूँ, मान तजूँ मार्दव भाऊँ ।  
 माया को आर्जव से जीतूँ, वृत्ति लोभ नहिं अपनाऊँ ॥७ ॥  
 उपसर्गों में क्रोध न तिलभर, चक्री वन्दे मान नहीं ।  
 देह जाय किञ्चित् नहिं माया, सिद्धि का लोभ निदान नहीं ॥८ ॥  
 नग्न वेष अरु केशलोंच, स्नान दन्त धोवन का त्याग ।  
 नहीं रुचि शृङ्गार प्रति, निज संयम से होवे अनुराग ॥९ ॥  
 शत्रु मित्र देखूँ न किसी को, मानामान में समता हो ।

जीवन मरण दोऊ सम देखूँ, भव-शिव में न विषमता हो ॥१० ॥  
 एकाकी जंगल मर घट में, हो अडोल निज ध्यान धरूँ ।  
 सिंह व्याघ्र यदि तन को खायें, उनमें मैत्रीभाव धरूँ ॥११ ॥  
 घोर तपश्चर्या करते, आहार अभाव में खेद नहीं ।  
 सरस अन्न में हर्ष न रजकण, स्वर्ग ऋद्धि में भेद नहीं ॥१२ ॥  
 चारित मोह पराजित होवे, आवे जहाँ अपूर्वकरण ।  
 अनन्य चिन्तन शुद्धभाव का, क्षपक श्रेणि पर आरोहण ॥१३ ॥  
 मोह स्वयंभूरमण पार कर, क्षीणमोह गुणस्थान वरूँ ।  
 ध्यान शुक्ल एकत्व धार कर, केवलज्ञान प्रकाश करूँ ॥१४ ॥  
 भव के बीज घातिया विनशे, होऊँ मैं कृतकृत्य तभी ।  
 दर्शज्ञान सुख बल अनन्तमय, विकसित हों निजभाव सभी ॥१५ ॥  
 चार अघाती कर्म जहाँ पर, जली जेबरी भाँति रहें ।  
 आयु पूर्ण हो मुक्त दशा फिर, देह मात्र भी नहीं रहे ॥१६ ॥  
 मन वच काया कर्म वर्गणा, के छूटे सब ही सम्बन्ध ।  
 सूक्ष्म अयोगी गुणस्थान हो, सुखदायक अरु पूर्ण अबन्ध ॥१७ ॥  
 परमाणु मात्र स्पर्श नहीं हो, निष्कलंक अरु अचल स्वरूप ।  
 चैतन्य मूर्ति शुद्ध निरंजन, अगुरुलघु बस निजपद रूप ॥१८ ॥  
 पूर्व प्रयोगादिक कारण वश, ऊर्ध्व गमन सिद्धालय तिष्ठ ।  
 सादि अनन्त समाधि सुख में, दर्शन ज्ञान चरित्र अनन्त ॥१९ ॥  
 जो पद श्री सर्वज्ञ ज्ञान में, कह न सके पर श्री भगवान ।  
 वह स्वरूप फिर अन्य कहे को, अनुभव गोचर है वह ज्ञान ॥२० ॥  
 मात्र मनोरथ रूप ध्यान यह, है सामर्थ्य हीनता आज ।  
 'रायचन्द' तो भी निश्चय मन, शीघ्र लहूँगा निजपद राज ॥२१ ॥  
 सहज भावना से प्रेरित हो, हुआ स्वयं ही यह अनुवाद ।  
 शब्द अर्थ की चूक कहीं हो, सुधी सुधार हरो अवसाद ॥२२ ॥

### षोडशकारण विंशतिका

भावना सहज होय स्वामी । भावना सहज होय स्वामी ।  
 स्वयं स्वयं में मग्न रहूँ, तुम सम त्रिभुवननामी ॥  
 नहीं स्वप्न में भी अपना, परमाणुमात्र भासे,  
 सदा सहज अनुभूतिरूप, आतम ही प्रतिभासे ।  
 एक शुद्ध ज्ञायक स्वरूप परमानन्दमय आतम,  
 स्वयंसिद्ध शाश्वत परमातम जाना शुद्धातम ॥१॥  
 निरतिचार निर्मल सम्यग्दर्शन वर्ते सुखमय,  
 निजस्वभाव में सहज निशंकित निर्वाछक निर्भय ।  
 ज्ञेयमात्र ही रहें ज्ञेय, नहीं ग्लानि उपजावे,  
 तत्त्वदृष्टि हो उपगूहन जीवन में बर्तावे ॥२॥  
 चित्त-चंचलता मिटे स्वयं में ही थिरता पाऊँ,  
 वात्सल्य से आतम ही उत्कृष्टपने भाऊँ ॥  
 भेदज्ञान हो मद नहीं उपजे महाक्लेश कारी,  
 दैन्य और अभिमान रहित हो जीवन हितकारी ॥३॥  
 तीन मूढ़ता षट् अनायतन नहिं आयें मन में,  
 प्रभु निर्मूढ़ प्रवृत्ति होवे, चिदानन्द घन में ।  
 नहीं वृत्ति हो लोकनिन्द्य व धर्मनिन्द्य प्रभुवर,  
 धर्मप्रभावक मंगलदायक हो वृत्ति जिनवर ॥४॥  
 विनयवंत भगवंत कहावें, नहीं पर माँहि झुकें,  
 वे ही हैं आदर्श जगत में सब दुख द्वन्द्व मिटें ।  
 अविनय नहीं हो पाय किसी की, विनय योग्य होवे,  
 आत्मविनतता रूप विनय निश्चय सब दुख खोवे ॥५॥  
 दृष्टा-ज्ञाता रहूँ शील, अंतर में प्रगटावे,  
 भोगूँ निजानन्दरस अविरल, नहिं विकल्प आवे ॥  
 अपनी मर्यादा में रहकर, ध्रुव प्रभुता पाऊँ,  
 ब्रह्मचर्य की होय पूर्णता, निजपद प्रगटाऊँ ॥६॥

भेदज्ञान की रहे भावना, तब तक हे स्वामी,  
 ज्ञान-ज्ञान में होय प्रतिष्ठित, शाश्वत सुखदानी ।  
 हो अविच्छिन्न ज्ञानानुभूति, दुर्वार मोह नाशे,  
 शुद्ध चेतना का प्रकाश स्वाभाविक परकाशे ॥७ ॥  
 रहा नहीं उत्साह शेष किंचित परभावन में,  
 हौंस जगी है एक मात्र निज शिवपद साधन में ।  
 सब संसार असार दुःखमय, दुःखों का कारण,  
 धन्य घड़ी आतम आराधूँ, कर मुनिपद धारण ॥८ ॥  
 अपनी शक्ति अपने में ही, सहज प्रत्यक्ष दिखी,  
 वैभाविक परिणति अति दुःखमय, सहजपने छूटी ।  
 जीवन का क्षण-क्षण सार्थक हो धर्माराधन में,  
 सर्व समर्पण हो जावे जिनधर्म प्रभावन में ॥९ ॥  
 समझ न पाया व्यर्थहिं चिर से पर में भरमाया,  
 धन्य हुआ अपने में ही विश्राम सहज पाया ।  
 चाह नहीं कुछ शेष नाथ, निज में ही रम जाऊँ,  
 कर्म जलाऊँ तप-अग्नि में, मुक्त दशा पाऊँ ॥१० ॥  
 सहयोगी होऊँ समाधि में साधु साधकों की,  
 रही नहीं परवाह प्रभो अब मुझे बाधकों की ।  
 अखण्ड ज्ञानमय सहज भावना रूप समाधी को,  
 आनन्दपूर्वक धारण करके तजूँ उपाधी को ॥११ ॥  
 ज्ञानी गुरुओं की सेवा में हो तत्पर निशिदिन,  
 उन सम ही वैराग्य बढ़ाऊँ मैं अपना क्षण-क्षण ।  
 शुद्धातम की सेवा करते खेद नहीं पाऊँ,  
 हर्ष सहित धारूँ रत्नत्रय भव से तिर जाऊँ ॥१२ ॥  
 धर्म पिता अरहंत जिनेश्वर सांची भक्ति करूँ,  
 झूठे विषय-कषाय त्याग कर, क्षण-क्षण ध्यान धरूँ ।  
 स्वानुभूति ही निश्चय भक्ति द्वैत विकल्प नहीं,  
 संकटत्राता शिवसुखदाता, जाना सार यही ॥१३ ॥

अहो संघनायक आचारज विज्ञानी-ध्यानी,  
 स्वयं आचरण करें करायें सबको शिवदानी ।  
 उनकी चरण शरण से हो निर्दोष चरण सुखमय,  
 बढ़ती जावे वीतरागता पाऊँ पद अक्षय ॥१४ ॥  
 उपाध्याय गुरु पढ़ें पढ़ावें संघ में जिनवाणी,  
 अनेकान्तमय तत्त्व प्रकाशें मोह तिमिर हानी ।  
 तज एकान्त पक्ष दुःखमय पक्षातिक्रान्त पावें,  
 फैले धर्म अहिंसा जग में आनन्द विलसावें ॥१५ ॥  
 मंगलदायक श्री जिन-प्रवचन नित जग में गूँजें,  
 तत्त्वभावना के प्रसाद से सर्व पाप धूजें ।  
 समयसार ही जिन-प्रवचन का सार सहज पाया,  
 ज्ञायक की ज्ञायकता लख परमानन्द विलसाया ॥१६ ॥  
 यथायोग्य हों षट् आवश्यक पापों का हारक,  
 किन्तु अवश का कर्म ज्ञानमय निश्चय आवश्यक ।  
 निर्विकल्प आनन्दरूप में उपादेय जाना,  
 रागादिक से भिन्न अहो मेरा चेतन वाना ॥१७ ॥  
 नित प्रभावना योग्य आत्मा भाऊँ अन्तर में,  
 ज्ञान, दान, व्रत, संयम, पूजा से हो बाहर में ।  
 जैनधर्म की नित प्रभावना दिन दूनी स्वामी,  
 लहें भव्य सन्मार्ग अहो मंगलमय अभिरामी ॥१८ ॥  
 शुद्धातम ही तीर्थ है शाश्वत, सब जग पहिचानें,  
 आत्मज्ञान प्रगटाकर सब ही मोह तिमिर हानें ।  
 सम्यक्चारित्र धारण करके, अक्षय सुख पावें,  
 कर्म नशावें शिवपद पावें, नहीं भव भरमावें ॥१९ ॥  
 ये ही भावना सोलह कारण, ज्ञानी को होवें,  
 वे बिन चाहे तीर्थकर हो, जग के दुःख खोवें ।  
 धर्मतीर्थ प्रगटावें जिसमें, भवि स्नान करें  
 आप तरें औरन को तारें, शिव साम्राज्य लहें ॥२० ॥

धन्य हुआ जिनशासन पाया, आत्मरुचि लागी,  
परभावों से भिन्न स्वाभाविक निज महिमा जागी ।  
स्वर्णिम अवसर मिला व्यर्थ नहीं पर में भरमाऊँ,  
तोड़ सकल जगद्वन्द्व-फंद निज शुद्धातम ध्याऊँ ॥२१ ॥

### दशधर्म द्वादशी

अहो दशलक्षण धर्म महान ।  
अहो दशलक्षण पर्व महान ॥  
धर्म नहीं दशरूप एक वीतराग भावमय जान ।  
सम्यग्दर्शन सहित परम आनन्दमय उत्तम मान ॥१॥  
तत्त्वदृष्टि से देखें जग में इष्ट-अनिष्ट न कोई,  
सुख-दुख-दाता मित्र-शत्रु की व्यर्थ कल्पना खोई ।  
स्वयं-स्वयं में सहज प्रगट हो क्षमा भाव अम्लान ॥२ ॥  
जो दीखे सब ही क्षणभंगुर किसका मान करे,  
पल में छोड़ हमें चल देता, अपना जिसे कहे ।  
ज्ञानमात्र आतम-अनुभवमय प्रगटे मार्दव आन ॥३ ॥  
कौन किसे ठगता इस जग में, अरे स्वयं ठग जाय,  
पर्ययमूढ़ हुआ मूरख, विषयों में काल गँवाय ।  
भेदज्ञान कर अंतरंग में हो आर्जव सुखखान ॥४ ॥  
अशुचिरूप मिथ्यात्व कषायें तज, विवेक उर लावें ।  
व्यसन, पाप, अन्याय, अभक्ष को त्याग पात्रता पावें ।  
परमशुद्ध आतम-अनुभव ही, शौचधर्म पहिचान ॥५ ॥  
गर्हित निंद्य और हिंसामय भाव वचन परिहार,  
परम सत्य ध्रुव ज्ञायक जानो, अभूतार्थ व्यवहार ।  
ज्ञायकमय अनुभूति लीनता, सत्यधर्म अभिराम ॥६ ॥  
अहो अतीन्द्रिय शुद्धातम सुख ज्ञान अतीन्द्रिय जान  
इन्द्रिय विषय-कषायें जीतो हो हिंसा की हानि ।  
आत्मलीनतामय संयम से, ही पावें शिवधाम ॥६ ॥

अनशनादि बहिरंग प्रायश्चित्त आदि अंतरंग जान,  
 निजस्वरूप में विश्रान्ति, इच्छानिरोध तप मान ।  
 तप अग्नि प्रज्वलित होय तब, जलें कर्म दुःखखान ॥७ ॥  
 सर्प काँचली मात्र तजे से, ज्यों निर्विष नहीं होय,  
 केवल बाह्य त्याग से, त्यों ही सुख शान्ति नहीं होय ।  
 मिथ्या राग-द्वेष को त्यागें, शुद्धभावमय दान ॥८ ॥  
 नहिं परमाणु मात्र भी अपना सम्यक् श्रद्धा लावें,  
 मूर्च्छा भाव परिग्रह दुःखमय, तज शाश्वत सुख पावें ।  
 स्वयं-स्वयं में पूर्ण अनुभवन आकिंचन अम्लान ॥९ ॥  
 ब्रह्मस्वरूप स हज आनन्दमय, अकृत्रिम भगवान,  
 दूर रहे जहँ पुण्य-पापमय भाव कुशीली म्लान ।  
 ब्रह्मभावमय मंगलचर्या ब्रह्मचर्य सुखखान ॥१० ॥  
 धर्मी शुद्धातम को जाने बिना धर्म नहीं होय,  
 अरे अटक कर विषय-कषायों में मत अवसर खोय ।  
 कोटि उपाय बनाय भव्य अब करलें आतमज्ञान ॥११ ॥  
 भावें नित वैराग्य भावना, धरें भेदविज्ञान,  
 त्याग अडम्बर, होय दिगम्बर, ठानें निर्मल ध्यान ।  
 धर्ममयी श्रेणी चढ़ जावें, बनें सिद्ध भगवान ॥१२ ॥

### जिनमार्ग

कितना सुन्दर, कितना सुखमय, अहो सहज जिनपंथ है ।  
 धन्य धन्य स्वाधीन निराकुल, मार्ग परम निर्ग्रन्थ है ॥टेक ॥  
 श्री सर्वज्ञ प्रणेता जिसके, धर्म पिता अति उपकारी ।  
 तत्त्वों का शुभ मर्म बताती, माँ जिनवाणी हितकारी ।  
 अंगुली पकड़ सिखाते चलना, ज्ञानी गुरु निर्ग्रन्थ हैं ॥१ ॥  
 देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा ही, समकित का सोपान है ।  
 महाभाग्य से अवसर आया, करो सही पहिचान है ॥  
 पर की प्रीति महा दुखदायी, कहा श्री भगवंत है ॥२ ॥

निर्णय में उपयोग लगाना ही, पहला पुरुषार्थ है ।  
 तत्त्वविचार सहित प्राणी ही, समझ सके परमार्थ है ॥  
 भेदज्ञान कर करो स्वानुभव, विलसे सौख्य बसंत है ॥३॥  
 ज्ञानाभ्यास करो मनमाहीं, विषय-कषायों को त्यागो ।  
 कोटि उपाय बनाय भव्य, संयम में ही नित चित पागो ॥  
 ऐसे ही परमानन्द वेदें, देखो ज्ञानी संत हैं ॥४॥  
 रत्नत्रयमय अक्षय सम्पत्ति, जिनके प्रगटी सुखकारी ।  
 अहो शुभाशुभ कर्मोदय में, परिणति रहती अविकारी ॥  
 उनकी चरण शरण से ही हो, दुखमय भव का अंत है ॥५॥  
 क्षमाभाव हो दोषों के प्रति, क्षोभ नहीं किंचित् आवे ।  
 समता भाव आराधन से निज, चित्त नहीं डिगने पावे ॥  
 उर में सदा विराजें अब तो, मंगलमय भगवंत हैं ॥६॥  
 हो निशंक, निरपेक्ष परिणति, आराधन में लगी रहे ।  
 क्लेशित हो नहीं पापोदय में, जिनभक्ति में पगी रहे ॥  
 पुण्योदय में अटक न जावें, दीखे साध्य महंत है ॥७॥  
 परलक्षी वृत्ति ही आकर, शिवसाधन में विघ्न करे ।  
 हो पुरुषार्थ अलौकिक ऐसा, सावधान हर समय रहे ॥  
 नहीं दीनता, नहीं निराशा, आत्म शक्ति अनंत है ॥८॥  
 चाहे जैसा जगत परिणमे, इष्टानिष्ट विकल्प न हो ।  
 ऐसा सुन्दर मिला समागम, अब मिथ्या संकल्प न हो ॥  
 शान्तभाव हो प्रत्यक्ष भासे, मिटे कषाय दुरन्त हैं ॥९॥  
 यही भावना प्रभो स्वप्न में भी, विराधना रंच न हो ।  
 सत्य, सरल परिणाम रहें नित, मन में कोई प्रपंच न हो ॥  
 विषय कषायारम्भ रहित, आनन्दमय पद निर्ग्रन्थ है ॥१०॥  
 धन्य घड़ी हो जब प्रगटावे, मंगलकारी जिनदीक्षा ।  
 प्रचुर स्वसंवेदनमय जीवन, होय सफल तब ही शिक्षा ॥  
 अविरल निर्मल आत्मध्यान हो, होय भ्रमण का अंत है ॥११॥



अहो जितेन्द्रिय जितमोही ही, सहज परम पद पाता है ।  
 समता से सम्पन्न साधु ही, सिद्ध दशा प्रगटाता है ॥  
 बुद्धि व्यवस्थित हुई सहज ही, यही सहज शिवपंथ है ॥१२ ॥  
 आराधन में क्षण-क्षण बीते, हो प्रभावना सुखकारी ।  
 इसी मार्ग में सब लग जावें, भाव यही मंगलकारी ॥  
 सदृष्टि-सद्ज्ञान-चरणमय, लोकोत्तम यह पंथ है ॥१३ ॥  
 तीन लोक अरु तीन काल में, शरण यही है भविजन को ।  
 द्रव्य दृष्टि से निज में पाओ, व्यर्थ न भटकाओ मन को ॥  
 इसी मार्ग में लगें लगावें, वे ही सच्चे संत हैं ॥१४ ॥  
 है शाश्वत अकृत्रिम वस्तु, ज्ञानस्वभावी आत्मा ।  
 जो आतम आराधन करते, बनें सहज परमात्मा ॥  
 परभावों से भिन्न निहारो, आप स्वयं भगवंत है ॥१५ ॥

### आत्म-भावना

(तर्ज- मेरी भावना)

निजस्वभाव में लीन हुए, तब वीतराग सर्वज्ञ हुए ।  
 भव्य भाग्य अरु कुछ नियोग से, जिनके वचन प्रसिद्ध हुए ॥१ ॥  
 मुक्तिमार्ग मिला भव्यों को, वे भी बंधन मुक्त रहें ।  
 उनमें निजस्वभाव दर्शकता, देख भक्ति से विनत रहें ॥२ ॥  
 वीतराग सर्वज्ञ ध्वनित जो, सप्त तत्त्व परकाशक है ।  
 अविरोधी जो न्याय तर्क से, मिथ्यामति का नाशक है ॥३ ॥  
 नहीं उल्लंघन सके प्रतिवादी, धर्म अहिंसा है जिसमें ।  
 आत्मोन्नति की मार्ग विधायक, जिनवाणी हम नित्य नमें ॥४ ॥  
 विषय कषाय आरम्भ न जिनके, रत्नत्रय निधि रखते हैं ।  
 मुख्य रूप से निज स्वभाव, साधन में तत्पर रहते हैं ॥५ ॥  
 अट्ठाईस मूल गुण जिनके, सहज रूप से पलते हैं ।  
 ऐसे ज्ञानी साधु गुरु का, हम अभिनन्दन करते हैं ॥६ ॥  
 उन सम निज का हो अवलम्बन, उनका ही अनुकरण करूँ ।

उन ही जैसी परिचर्या से, आत्मभाव को प्रकट करूँ ॥७ ॥  
 अष्ट मूलगुण धारण कर, अन्याय अनीति त्यागूँ मैं ।  
 छोड़ अभक्ष्य सप्त व्यसनों को, पंच पाप परिहारूँ मैं ॥८ ॥  
 सदा करूँ स्वाध्याय तत्त्व, निर्णय सामायिक आराधन ।  
 विनय युक्ति और ज्ञान दान से, राग घटाऊँ मैं पावन ॥९ ॥  
 जितनी मंद कषाय होय, उसका न करूँ अभिमान कभी ।  
 लक्ष्य पूर्णता का अपनाकर, सहूँ परीषह दुःख सभी ॥१० ॥  
 गुणीजनों पर हो श्रद्धा, व्यवहार और निश्चय सेवा ।  
 उनकी करें दुःखी प्रति करुणा, हमको होवे सुख देवा ॥११ ॥  
 शत्रु न जग में दीखे कोई उन पर भी नहिं क्षोभ करूँ ।  
 यदि संभव हो किसी युक्ति से, उनमें भी सद्ज्ञान भरूँ ॥१२ ॥  
 राग नहीं हो लक्ष्मी का, ना लोकजनों की किंचित् लाज ।  
 प्रभु वचनों से जो प्रशस्त पथ, उसमें ही होवे अनुराग ॥१३ ॥  
 होय प्रशंसा अथवा निंदा कितने हों उपसर्ग कदा ।  
 उन पर दृष्टि भी नहिं जावे, परिणति में हो साम्य सदा ॥१४ ॥  
 होवे मौत अभी ही चाहे, कभी न पथ से विचलित हो ।  
 इष्ट-वियोग अनिष्ट-योग में, सदा मेरु से अचलित हो ॥१५ ॥  
 चाह नहीं हो परद्रव्यों की, विषयों की तृष्णा जावे ।  
 क्षण-क्षण चिन्तन रहे तत्त्व का, खोटे भाव नहीं आवे ॥१६ ॥  
 समय-समय निज अनुभव होवे, आत्म में थिरता आवे ।  
 सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरण से, शिवसुख स्वयं निकट आवे ॥१६ ॥  
 प्रगट होय निर्ग्रन्थ अवस्था, निश्चय आत्म ध्यान धरूँ ।  
 स्वाभाविक आत्म गुण प्रगटें, सकल कर्ममल नाश करूँ ॥१८ ॥  
 होवे अन्त भावनाओं का, यही भावना भाता हूँ ।  
 भेद दृष्टि के सब विकल्प तज, निज स्वभाव में रहता हूँ ॥१९ ॥

(दोहा)

सुखमय आत्मस्वभाव है, ज्ञाता-दृष्टा ग्राह्य ।

लीन आत्मा में रहे, स्वयं सिद्ध पद पाय ॥२० ॥

## नारी स्वरूप

यदि द्रव्य दृष्टि से देखो तो नारी तो कोई द्रव्य नहीं ।  
 असमान जाति का नाम मात्र, उसमें तो सुख है नहीं कहीं ॥१॥  
 जिस तन पर रीझ रहा मोही, वह तो पुद्गल का पिण्ड अरे ।  
 परिणति में आस्रव बंध चले, उसमें भीतर चैतन्य रहे ॥२॥  
 वह तो तेरे सम ही भाई, किंचित् विकार अस्तित्व नहीं ।  
 उसको निरखे भागे विकार, समता से होवे मुक्ति-मही ॥३॥  
 पर्यायमूढ़ मिथ्यात्वी को, निज भोग योग्य वह है दिखती ।  
 ज्यों रोग पीलिया होने पर, शुभ श्वेत वस्तु पीली दिखती ॥४॥  
 पति को तो पत्नी रूप दिखे, भाई को भगिनी दिखती है ।  
 सुत को माता, पुत्री पितु को, ज्यों दृष्टि है त्यों सृष्टि है ॥५॥  
 केमरा वस्त्र अरु चर्म ग्रहे, अस्थि एक्स-रे का विषय बने ।  
 त्यों अज्ञानी उपरोक्त लखे, पर ज्ञानी को चैतन्य दिखे ॥६॥  
 व्यवहार चतुर आगम प्रवीण, भी उसको लख चिंतन करता ।  
 चैतन्य विराधन कर माया से, आत्मा स्त्री तन धरता ॥७॥  
 यदि इसके हाव-भाव लखकर, मैं अपना धर्म विसारूँगा ।  
 तो पाप बंध होगा भारी होगा, नर भव की बाजी हारूँगा ॥८॥  
 यह भव तो भव के नाश हेतु, चिन्तामणि सम मैंने पाया ।  
 नारी की माया से हटकर, पाऊँगा रत्नत्रय भाया ॥९॥  
 निज आत्मतत्त्व है निर्विकार, उसका अवलम्बन मुझे उचित ।  
 इस सम विकार करना न योग्य, बस रहना ज्ञायक मुझे उचित ॥१०॥  
 स्त्री पर्याय को पाकर भी, जो ज्ञानरूप चेतन देखे ।  
 तो सम्यक्त्वी होकर निश्चय, यह स्त्रीलिंग तत्क्षण छेदे ॥११॥  
 ऐसा विचार कर यदि उर से, किंचित करुणा का स्रोत बहे ।  
 तो जम्बूस्वामी सम विरक्त उस उर में भी वैराग्य भरे ॥१२॥  
 अरु ध्यान दशा में निर्विकल्प स्वाभाविक परिणति होती है ।  
 निज ज्ञायक में जागृति रहे, परिणति बाहर से सोती है ॥१३॥

हैं धन्य-धन्य वे जीव सदा, जो हैं ऐसी परिणति धारी ।  
 उनकी महिमा के वर्णन में, इन्द्रों की भी बुद्धि हारी ॥१४ ॥  
 मैं बार-बार उनके चरणों में, सादर शीश नवाता हूँ ।  
 उन सम ही होऊँ निर्विकार, बस यही भावना भाता हूँ ॥१५ ॥

(दोहा)

परम ब्रह्म लखता रहूँ, एक अचल निज भाव ।  
 पूर्ण अखण्डित शील हो, मेटूँ सकल विभाव ॥

### ब्रह्मचर्य विंशतिका

है परम धर्म ब्रह्मचर्य धर्म, इसमें सब धर्म समाते हैं ।  
 जितने लगते दोष यहाँ, वे सब कुशील में आते हैं ॥१ ॥  
 जो ब्रह्मचर्य पालन करते, दुःख पास न उनके आते हैं ।  
 जो भोगों में आसक्त हुए, वे दुःख को स्वयं बुलाते हैं ॥२ ॥  
 भोगों की दाता स्त्री है, पंचेन्द्रिय भोग जुटाती है ।  
 इक बूँद और की आशा में, भोले नर को अटकाती है ॥३ ॥  
 स्पर्शन में कोमल शैया, ठंडा जल गरम-नरम भोजन ।  
 रसना को सरस प्रदान करे, शुभ गंध घ्राण के हेतु सृजन ॥४ ॥  
 चक्षु को हाव-भाव दर्शन, अरु राग वचन दे कानों को ।  
 हरती मन को बहु ढंगों से, संक्लेश करे अनजानों को ॥५ ॥  
 भोले जो विषयासक्त पुरुष, वे स्त्री में फँस जाते हैं ।  
 मल माया की साक्षात् मूर्ति, अस्पृश्य जिसे मुनि गाते हैं ॥६ ॥  
 स्त्री की काँख नाभि योनि, अरु स्तन के स्थानों में ।  
 सम्मूर्च्छन संज्ञी पंचेन्द्रिय, असंख्यात जीव प्रतिसमय मरें ॥७ ॥  
 श्री गुरु तो यहाँ तक कहते हैं, अच्छा नागिन का आलिंगन ।  
 पर नहीं रागमय-दृष्टि से, नारी के तन का भी निरखन ॥८ ॥  
 संसार चक्र की धुरी अरे, बस नारी को बतलाया है ।  
 आधे माँ आधे पत्नी से, नाते प्रत्यक्ष दिखाया है ॥९ ॥

यदि स्त्री से विमुक्त देखो, तो नहीं किसी से भी नाता ।  
 भोगेच्छा भी नहीं रहने से, तन-पुष्टि राग भी भग जाता ॥१० ॥  
 जग में हैं पुरुष अनेक भरे, जो असि के तीक्ष्ण वार सहें ।  
 अति क्रूर केहरी वश करते, मतवाले गज से नहीं डरें ॥११ ॥  
 पर वे तो वीर नहीं भाई, स्त्री कटाक्ष से हार गये ।  
 हैं महावीर वे ही जग में जो निर्विकार उस समय रहे ॥१२ ॥  
 यह तो निमित्त का कथन मात्र, है दोष नहीं कुछ नारी का ।  
 है दोष स्वयं की दृष्टि का, पुरुषार्थ शिथिलता भारी का ॥१३ ॥  
 यदि ज्ञान दृष्टि से देखो तो, परद्रव्य नहीं कुछ करता है ।  
 पर लक्ष्य करे खुद अज्ञानी, अरु व्यर्थ दुःख में पड़ता है ॥१४ ॥  
 पर को अपना स्वामी माने, खुद को आधीन समझता है ।  
 सुख हेतु प्रतिसमय क्लेशित है, अनुकूल प्रतीक्षा करता है ॥१५ ॥  
 प्रतिकूलों के प्रति क्षोभ करें, नित आर्तध्यान में लीन रहें ।  
 दुःखदाई ऐसे क्रूर भाव को, ज्ञानी स्त्रीपना कहें ॥१६ ॥  
 इन परभावों को ही कुशील, जिन-आगम में बतलाया है ।  
 पुण्यभाव भी निश्चय से, दुःखमय कुशील ही गाया है ॥१७ ॥  
 है ब्रह्म नाम आत्म स्वभाव, उसमें रहना ब्रह्मचर्य कहा ।  
 व्यवहार भेद अठारह हजार, निश्चय अभेद सुखकार महा ॥१८ ॥  
 अतएव भ्रात ब्रह्मचर्य धरो, नव-बाढ़ शील की पालो तुम ।  
 अतिचार पंच भी तजकर के, अनुप्रेक्षा पंच विचारो तुम ॥१९ ॥  
 निश्चय ही जीवन सफल होय, आकुलता दूर सभी होगी ।  
 विश्राम मिले निज में निश्चय, अक्षय-पद की प्राप्ति होगी ॥२० ॥

(दोहा)

ब्रह्मचर्य सुखमय सदा, निश्चय आत्मस्वभाव ।  
 पावनता स्वयमेव हो, मिटते सभी विभाव ॥२१ ॥

## चेतो -चेतो आराधना में

देखो-देखो यह जीव की, विराधना का फल ।

चेतो-चेतो आराधना में, मत बनो निर्बल ॥टेक ॥

पाषाण खण्ड कह रहे, कठोरता त्यागो ।

विनम्र हो उत्साह से, शिवमार्ग में लागो ।

बहते हुए झरने कहें, धोओ मिथ्यात्व मल ॥१ ॥

ईर्ष्या त्यागो जलती हुई, अग्नि है कह रही ।

मत चाह दाह में जलो, सुख अन्तर में सही ॥

वायु कहे भ्रमना वृथा, होओ निज में निश्चल ॥२ ॥

जड़ता छोड़ो प्रमाद को नाशो कहें तरुवर ।

शुद्धात्मा ही सार है, उपदेश दें गुरुवर ॥

समझो-समझो निजात्मा, अवसर बीते पल-पल ॥३ ॥

मायाचारी संक्लेशता का, फल कहें तिर्यच ।

जागो अब मोह नींद से, छोड़ो झूठे प्रपञ्च ॥

जिनधर्म पाया भाग्य से, दृष्टि करो निर्मल ॥४ ॥

शृंगार अरु भोगों की रुचि का, फल कहती नारी ।

कंजूसी पूर्वक संचय का, फल कहते भिखारी ॥

बहु आरम्भ परिग्रह फल में, नारकी व्याकुल ॥५ ॥

असहाय शक्ति हीन, देखो दरिद्री रोगी ।

कोइ इष्ट वियोगी,कोई अनिष्ट संयोगी ॥

घिनावना तन रूप, अंगोपांग हैं शिथिल ॥६ ॥

यदि ये दुःख इष्ट नहीं हैं, तो निज भाव सुधारो ।

निवृत्त हो विषय कषायों से, निजतत्त्व विचारो ॥

चक्री के वैभव भोग भी, सुख देने में असफल ॥७ ॥

पाकर किञ्चित् अनुकूलताएँ, व्यर्थ मत फूलो ।

हैं पराधीन आकुलतामय, नहीं मोह में भूलो ॥

ध्रुव चिदानन्दमय आत्मा, लक्ष्य करो अविरल ॥८ ॥

पुण्यों की भी तृष्णायतनता, अबाधित जानो ।  
 बन्धन तो बन्धन ही, उसे शिव मार्ग मत मानो ॥  
 अंक बिन बिन्दी त्यों अनुभव बिन जीवन निष्फल ॥९ ॥  
 अब योग तो सब ही मिले, पुरुषार्थ जगाओ ।  
 अन्तर्मुख हो बस मात्र, जाननहार जनाओ ।  
 सन्तुष्ट निज में ही रहो, ब्रह्मचर्य हो सफल ॥१० ॥  
 सब प्राप्य निज में ही अहो, स्थिरता उर लाओ ।  
 तुम नाम पर व्यवहार के, बाहर न भरमाओ ॥  
 निर्ग्रन्थ हो निर्द्वन्द्व हो ध्याओ, निजपद अविचल ॥११ ॥  
 निज में ही सावधान ज्ञानी, साधु जो रहते ।  
 वे ही? जग के कल्याण में, निमित्त हैं होते ।  
 ध्याओ-ध्याओ शुद्धात्मा, पर की चिन्ता निष्फल ॥१२ ॥  
 निर्बन्ध के इस पंथ में, जोड़ो नहीं सम्बन्ध ।  
 विचरो एकाकी निष्पृही, निर्भय सहज निशंक ॥  
 निर्मूढ़ हो निर्मोही हो, पाओ शिवपद अविचल ॥१३ ॥

## अपनी वैभव गाथा

(मरहठा-माधवी)

आत्मन् अपनी वैभव गाथा, सुनो परम आनन्दमय ।  
 स्वानुभूति से कर प्रमाण, प्रगटाओ सहज सौख्य अक्षय ।।टेक ॥  
 स्वयं सिद्ध सत रूप प्रभो, नहिं आदि मध्य अवसान है ।  
 तीन लोक चूड़ामणि आत्म, प्रभुता सिद्ध समान है ॥  
 सिद्ध प्रभू ज्यों ज्ञाता त्यों ही, तुम ज्ञाता भगवान हो ।  
 करो विकल्प न पूर्ण अपूर्ण का निर्विकल्प अम्लान हो ॥  
 निश्चय ही परमानन्द विलसे, सर्व दुखों का होवे क्षय ॥१ ॥  
 हों संयोग भले ही कितने, संयोगों से भिन्न सदा ।  
 नहीं तजे निजरूप कदाचित्, होवे नहीं पररूप कदा ॥

कर्मबंध यद्यपि अनादि से, तदपि रहे निर्बन्ध सदा ।  
 वैभाविक परिणमन होय, फिर भी तो है निर्द्वन्द्व अहा ॥  
 देखो-देखो द्रव्यदृष्टि से, चित्स्वरूप अनुपम सुखमय ॥२ ॥  
 एक-एक शक्ति की महिमा, वचनों में नाहिं आवे ।  
 शक्ति अनंतों उछलें शाश्वत, चिन्तन पार नहीं पावे ॥  
 प्रभु स्वाधीन अखंड प्रतापी, अकृत्रिम भगवान अहो ।  
 जो भी ध्यावे शिवपद पावे, ध्रुव परमेष्ठी रूप विभो ।  
 भ्रम को छोड़ो करो प्रतीति, हो निशंक निश्चल निर्भय ॥३ ॥  
 केवलज्ञान अनंता प्रगटे, ऐसा ज्ञान स्वरूप अहो ।  
 काल अनंत-अनंतसुख विलसे, है अव्ययसुख सिंधु अहो ॥  
 अनंत ज्ञान में भी अनंत ही, निज स्वरूप दर्शाया है ।  
 पूर्णपने तो दिव्यध्वनि में भी, न ध्वनित हो पाया है ॥  
 देखो प्रभुता इक मुहूर्त में, सब कर्मों पर लहे विजय ॥४ ॥  
 आत्मज्ञान बिन चक्री इन्द्रादिक भी, तृप्ति नहीं पावें ।  
 सम्यग्ज्ञानी नरकादिक में भी अपूर्व शान्ति पावें ॥  
 इसीलिये चक्री तीर्थकर, बाह्य विभूति को तजते ।  
 हो निर्ग्रथ दिगम्बर मुनिवर, चिदानन्द पद में रमते ॥  
 धन्य-धन्य वे ज्ञानी ध्यावें, समयसार निज समय-समय ॥५ ॥  
 चक्रवर्ती की नवनिधियाँ, पर निज निधियों का पार नहीं ।  
 चौदह रत्न चक्रवर्ती के, आत्म गुण भण्डार सही ॥  
 चक्रवर्ती का वैभव नश्वर, आत्म विभूति अविनाशी ।  
 जो पावे सो होय अयाची, कट जाये आशापाशी ।  
 झूठी दैन्य निराशा तजकर, पाओ वैभव मंगलमय ॥६ ॥  
 चंचल पुल विकल्पों को तो, एक स्फुलिंग ही नाशे ।  
 आत्म तेज पुञ्ज सर्वोत्तम, कौन मुमुक्षु न अभिलाषे ॥  
 चिंतामणि तो पुण्य प्रमाणे, जग इच्छाओं को पूरे ।



धन्य-धन्य चेतन चिंतामणि, क्षण में वांछायें चूरे ॥  
 निर्वाँछक हो अहो अनुभवो, अविनश्वर कल्याण मय ॥७ ॥  
 जिनधर्मों की पूजा करते, उनका धर्मो शुद्धातम ।  
 परमपूज्य जानो पहिचानो, शुद्ध चिदम्बर परमातम ॥  
 परमपारिणामिक ध्रुवज्ञायक, लोकोत्तम अनुपम अभिराम ।  
 नित्यनिरंजन परमज्योतिमय, परमब्रह्म अविचल गुणधाम ॥  
 करो प्रतीति अनुभव परिणति, निज में ही हो जाये विलय ॥८ ॥  
 गुरु की गुरुता, प्रभु की प्रभुता, आत्माश्रय से ही प्रगटे ।  
 भव-भव के दुखदायी बंधन, स्वाश्रय से क्षण में विघटे ॥  
 आत्मध्यान ही उत्तम औषधि, भव का रोग मिटाने को ।  
 आत्मध्यान ही एक मात्र साधन है, शिवसुख पाने को ।  
 झूठे अंहकार को छोड़ो, शुद्धातम की करो विनय ॥९ ॥  
 रुचि न लगे यदि कहीं तुम्हारी, एक बार निज को देखो ।  
 खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु से निज महिमा को देखो ॥  
 भ्रांति मिटेगी, शांति मिलेगी, सहज प्रतीति आयेगी ।  
 समाधान निज में ही होगा, आकुलता मिट जायेगी ।  
 चूक न जाना स्वर्णिम अवसर, करो निजातम का निश्चय ॥१० ॥

### सेठ सुदर्शन गाथा

धनि धन्य हैं सेठ सुदर्शन, अद्भुत शील व्रतधारी ।  
 जिनकी पावन दृढ़ता से, कुटिला नारी भी हारी ॥टेक ॥  
 इक रोज महल में बैठे, दासी ने आय बताया ।  
 तव मित्र बहुत घबड़ाये, इस क्षण ही तुम्हें बुलाया ॥  
 कुछ छल को समझ न पाये, थे सरल परिणति धारी ।  
 वैसे ही दौड़े पहुँचे, पर वहाँ थी लीला न्यारी ॥१ ॥  
 ज्यों सेठ गये थे अन्दर, दरवाजा बंद सु कीना ।  
 आसक्ति भरी नारी ने, निर्लज्ज प्रदर्शन कीना ॥

वह मित्र गया था बाहर, कपिला ने चाल विचारी ।  
 हो सेठ रूप पर मोहित, उसने की थी तैयारी ॥२ ॥  
 फँस गये धर्म संकट में, तब सेठ विचार सु कीना ।  
 इससे तो मरण भला है, निज शील बिना क्या जीना?  
 तब हँसे वचन यों बोले, वे अनेकांत के धारी ।  
 मैं तो हूँ अरे नपुंसक, तूने पहिले न विचारी ॥३ ॥  
 तत्क्षण ही घृणाभाव कर, हट गयी स्वयं ही पतिता ।  
 तब सेठ सहज घर आये, लेकर अपनी पावनता ॥  
 पुरुषत्व शीलधारी का, नहीं होय कदापि विकारी ।  
 नहीं धर्म मार्ग से च्युत हों, रहते ज्ञानी अविकारी ॥४ ॥  
 ओ भव्य समझना यों ही, आत्मा में शक्ति अनंता ।  
 पर ज्ञाता-दृष्टा ही है, नहीं होवे पर का कर्ता ॥  
 आत्मन् अब भी तो चेतो, छोड़ो भ्रांति दुखकारी ।  
 कर्तृत्व विकल्प न लाओ, तब सुख पाओ अविकारी ॥५ ॥  
 इक रोज वसंतोत्सव में, जाते थे सब नर-नारी ।  
 अभया रानी भी जावे, कपिला भी जाये बेचारी ॥  
 तब रथ में आती देखी, सुत गोद लिये एक नारी ।  
 अभया रानी ने पूछा, किसके सुत सुन्दर प्यारी ॥६ ॥  
 दासी ने तुरन्त बताया, जो सेठ सुदर्शन नामी ।  
 उनके ही हैं सुत नारी, सुनकर कपिला मुस्कानी ॥  
 है सेठ नपुंसक, कैसे फिर वह नारी सुत धारी?  
 हँस कर रानी तब बोली, धनि सेठ शील व्रतधारी ॥७ ॥  
 चाहा था उन्हें फंसाना, ठग गयी स्वयं ही तू तो ।  
 मूर्खा तू समझ न पाई, तत्काल सेठ युक्ति को ॥  
 मैं तो मूर्खा ही ठहरी, बोली झुंझला बेचारी ।  
 वश में करके दिखलाओ, तुम रूप बुद्धिबलधारी ॥८ ॥

रानी बातों में आयी, बुद्धि विवेक विसरानी ।  
 दूती को लालच देकर, तब सेठ मिलन की ठानी ॥  
 धर्मात्मा सेठ सुदर्शन, धर नग्न दशा अविकारी ।  
 मरघट में ध्यान लगाते, चौदश निशि धीरज धारी ॥९ ॥  
 दूती ने जाल बिछाया नर मूर्ति तुरत बनवायी ।  
 कंधे पर रखकर उसको, महलों के द्वारे आयी ॥  
 ज्यों द्वारपाल ने रोका, दूती ने मूर्ति गिरा दी ।  
 व्रत टूट गया रानी का, तोहि सजा दिलाऊँ भारी ॥१० ॥  
 यों द्वारपाल वश कीने, तब उठा सेठ को लाई ।  
 बैठाया जाय पलंग पर, रानी अति ही हरषाई ॥  
 भारी चेष्टायें कीनी, यों रात गुजर गयी सारी ।  
 पर ध्यान मग्न थे श्रेष्ठी, उपसर्ग समझ अतिभारी ॥११ ॥  
 ध्रुव का अवलम्बन जिनके, विचलित नहीं होते जग में ।  
 उपसर्ग परीषह आवें, पर सतत बढ़ें शिवमग में ॥  
 है आत्मज्ञान की महिमा, हो अद्भुत समता धारी ।  
 उनकी गरिमा वर्णन में, इन्द्रों की बुद्धि हारी ॥१२ ॥  
 जब विफल स्वयं को जाना, रानी षडयंत्र रचाया ।  
 बिखराकर वस्त्राभूषण, तब उसने शोर मचाया ॥  
 तत्क्षण सब दौड़े आये, नृप क्रोध किया अतिभारी ।  
 कुछ न्याय अन्याय न जाना, शूली की सजा सुना दी ॥१३ ॥  
 शूली के तख्ते पर थे, बैठे वे धर्म धुरन्धर ।  
 किंचित् घबड़ाहट नहीं, डूबे समता के अन्दर ॥  
 तब नभ से पुष्प बरसते, सिंहासन रच गया भारी ।  
 इन्द्रादिक स्तुति करते, जय-जय बोलें नर-नारी ॥१४ ॥  
 चम्पापुरी धन्य हुयी थी, अरु वृषभदत्त यश पाया ।  
 जिनके सुत सेठ सुदर्शन, यह चमत्कार दिखलाया ॥

पिछले ग्वाले के भव में, श्रद्धा जिनधर्म की धारी ।  
 फिर श्रेष्ठी सुत होकर यों, महिमा पाई सुखकारी ॥१५ ॥  
 चरणों में नत हो भूपति, पछताते क्षमा कराते ।  
 तब सेठ सुदर्शन बोले, हम दीक्षा ले वन जाते ॥  
 नहिं दोष किसी का कुछ भी, कर्मों की लीला न्यारी ।  
 कर्मों का नाश करेंगे, निर्ग्रन्थ दशा धर प्यारी ॥१६ ॥  
 उत्तम सुयोग पाकर भी, मैं समय न व्यर्थ गवाऊँ ।  
 भोगों के दुख बहु पाये, अब इनमें नाहिं फसाऊँ ॥  
 नश्वर अशरण जगभर में, शुद्धातम ही सुखकारी ।  
 निज में ही तृप्ति पाँऊ, संकल्प जगा हितकारी ॥१७ ॥  
 मुनि हो तप करते-करते, पटना नगरी में आये ।  
 उपसर्ग वहाँ भी भारी, पर किंचित् नहीं चिगाये ॥  
 फिर शुक्लध्यान के द्वारा कर्मों की धूल उड़ा दी ।  
 प्रभु पौष शुक्ल पंचमी को, निर्वाण गये सुखकारी ॥१८ ॥  
 है निमित्त अकिंचित्कर ही, किंचित् नहिं सुख-दुखदाता ।  
 निज की सम्यक् दृढ़ता से मिटती है सर्व असाता ॥  
 प्रभु यही भावना मेरी, तुमसा पुरुषार्थ सु धारी ।  
 होकर शिवपदवी पाऊँ, चरणों में ढोक हमारी ॥१९ ॥  
 भवि पढ़ें सुनैँ यह गाथा, हो तत्त्वज्ञान के धारी ।  
 निज सम नारी भगिनी सम, लघु सुता, बड़ी महतारी ॥  
 'आत्मन्' ज्ञानाराधन से, उपजे नहीं भाव विकारी ।  
 सारे ही जग में फैले यह, शील धर्म सुखकारी ॥२० ॥

पुद्गल को का देखिए, धरे विनाशीरूप ।  
 अन्तर को नित देखिए, धरे चिदानन्दरूप ॥

## वैराग्य द्वादशी

ध्याऊँ परम आनन्दमय, चैतन्य प्रभु अम्लान,  
 एक ही है शरण जग में हुआ अब श्रद्धान।  
 नित्य अविकारी प्रभु पक्षातिक्रान्त निहार,  
 कह सकूँ नहीं हुआ मोहि आनन्द अपरम्पार ॥ टेक ॥  
 देवदर्शन का अलौकिक फल मिला सुखकार,  
 ज्ञान में प्रत्यक्ष जनावे सहज जाननहार।  
 उछलती हैं शक्तियाँ चैतन्य माँहि अपार ॥ कह०  
 भ्रान्तिवश भ्रमता रहा परमाँहि सुख विचार,  
 जाना-देखा नहीं शुद्धात्मा, आनन्द का भण्डार।  
 धनि मिली प्रभु देशना, पाया समय का सार ॥ कह०  
 चाह नहीं चिंता नहीं, परिपूर्ण तत्त्व दिखाय,  
 अतीन्द्रिय स्वाधीन सुखसागर सहज लहराय।  
 अविरल निमग्न रहूँ अहो, दीखे नहीं संसार ॥ कह०  
 आत्मीक वैभव अलौकिक दिखे अखय अनन्त,  
 जयवन्त होवे स्वानुभूति सत्य मुक्तीपंथ।  
 स्वानुभव में ही दिखे शिवरूप मंगलकार ॥ कह०  
 ज्ञानमय निज स्वाद पाया और कुछ न सुहाय,  
 संकल्प और विकल्प मिथ्या लगे सब दुखदाय।  
 प्रगट हो निर्ग्रन्थ पद आनन्दमय अविकार ॥ कह०  
 वन माँहि नित निर्विघ्न, आराधूँ सहज परमात्म,  
 स्वप्न में भी ध्यान में वर्ते अहो शुद्धात्म।  
 खिन्नता किंचित् न हो गर मिले नहीं आहार ॥ कह०  
 सहज समताभाव हो ज्ञाता रहूँ निरपेक्ष,  
 देवांगनाएँ भी न चित्त में कर सकें विक्षेप।  
 निर्दोष ज्ञान-विरागमय चर्या हो निरतिचार ॥ कह०

रंचमात्र न पापमय होवे प्रवृत्ति कदापि,  
 पदयोग्य हों शुभ भाव भी उनसे विरक्ति तथापि ।  
 शुद्धोपयोगी सहज परिणति होय मंगलकार ॥ कह०  
 सातिशय अप्रमत्त सप्तम अधःकरण निवार,  
 हो अपूर्वकरण तथा अनिवृत्तिकरण सुखकार ।  
 सूक्ष्मलोभ भी नष्ट हो वीतरागता अविकार ॥ कह०  
 नशि जाय त्रेसठ प्रकृति हो अरहंत पद अविकार,  
 तीर्थ का होवे प्रवर्तन, जगत में सुखकार ।  
 पुनि घाति शेष अघातिया हो लहूँ शिवपद सार ॥ कह०  
 नहीं अपेक्षा अब किसी की सहज मिलिहैं योग,  
 सहज जीवन सहज-साधन सहज भाव मनोग ।  
 मुक्ति ही मानो मिली जब मिला जाननहार ॥ कह०

### प्रभावना

जिनशासन की प्रभावना निर्दोष हो स्वामी ।  
 रे अन्तर्मन की भावना निर्दोष हो स्वामी ॥टेक ॥  
 श्रद्धान हो सम्यक् सहज अभिप्राय निर्मल हो,  
 आराधनामय साधनामय भाव निश्छल हो ।  
 जगख्याति पूजा लाभ की नहीं चाह हो स्वामी ॥१ ॥  
 नहीं करके पक्ष निश्चय का स्वच्छन्द हो जीवन,  
 नहीं पक्षवश व्यवहार के हो ज्ञान-विराधन ।  
 हो मैत्री ज्ञान-विराग की आनन्दमय स्वामी ॥२ ॥  
 पक्षातिक्रान्त समयसार प्राप्त हो सबको,  
 चैतन्यमय शुद्धात्मा अनुभूत हो सबको ।  
 अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दमय परिणाम हो स्वामी ॥३ ॥  
 परद्रव्यों में नहीं कल्पना अच्छे बुरे की हो,  
 पीवें अतीन्द्रिय ज्ञानरस जिनवर जितेन्द्रिय हो ।  
 इन्द्रिय विषयों से हो विरक्ति स्वाभाविक स्वामी ॥४ ॥

समझे निमित्त अकिंचित्कर हो निरवलम्बी,  
 निरपेक्ष हों निश्चिंत हों निर्द्वन्द्व स्वस्थ भी ।  
 नित ही रहें निज में ही निज से तृप्त हे स्वामी ॥५ ॥  
 नहीं पुण्य-पाप के उदय में हर्ष खेद हो,  
 अरि-मित्र निन्दा-स्तुति में कुछ न भेद हो ।  
 हो मोह-क्षोभ-शून्य शुद्ध आचरण स्वामी ॥६ ॥  
 नहीं जन्म जयन्ती में ही हम हो जावें मगन,  
 समझे स्वयं को स्वयंसिद्ध अनादिनिधन ।  
 निर्लिप्त उदासीन ज्ञातारूप हों स्वामी ॥७ ॥  
 मोही जनों की ममता से नित सावधान हों,  
 धनि-धनि सिर ऊपर ज्ञानी गुरु विराजमान हों ।  
 उनके अनुशासन में रहकर स्वतंत्र हों स्वामी ॥८ ॥  
 अबद्धस्पृष्ट अनन्य नियत और असंयुक्त,  
 अविशेष देखें आत्मा होवें सहज ही मुक्त ।  
 परमार्थ ही हो स्वार्थ हों निस्वार्थ हे स्वामी ॥९ ॥  
 सब जीव सिद्ध सम दिखें नहिं राग-द्वेष हो,  
 ज्ञेयों से भिन्न ज्ञायक की महिमा विशेष हो ।  
 हो उपादेय आत्मा को आत्मा स्वामी ॥१० ॥  
 जाने निज परमब्रह्म ब्रह्मरूप में रमे,  
 निर्दोष ब्रह्मचर्य हो दुर्वासना भगे ।  
 आदर्श प्रेरणा स्वरूप हो चरण स्वामी ॥११ ॥  
 होते जावें विज्ञानघन, रागादि क्षीण हों,  
 नहीं दीन हों स्वाधीन पर से उदासीन हों ।  
 निकलंक हों निष्पाप हों निर्ग्रन्थ हों स्वामी ॥१२ ॥  
 एकाकी निर्भय निज में ही संतुष्ट रहेंगे,  
 शुद्धात्मा के ध्यान से सब कर्म भगेंगे ।  
 प्रगटे सहज अक्षय परम प्रभुता अहो स्वामी ॥१३ ॥

रहकर भी मौन सहज मुक्तिमार्ग कहेंगे,  
धनि-धनि अनुभूतमार्ग के प्रणेता बनेंगे।  
होगी प्रभावना अहो परिपूर्ण हो स्वामी ॥१४॥

### स्वाधीन-मार्ग

स्वाधीनता का मार्ग तो निर्ग्रन्थ मार्ग है।  
आराधना का मार्ग ही स्वाधीन मार्ग है ॥टेक॥  
स्वाधीनता पर से नहीं स्व से सदा आती।  
निज में ही तृप्त परिणति स्वाधीन हो जाती ॥  
संतुष्ट है निज में अहो स्वाधीन है वह ही।  
इच्छाओं के वशवर्ती भोगाधीन है वह ही ॥  
जो भोगों का है दास वह सब जग का दास है।  
जो भोगों से उदास प्रभुता उसके पास है ॥  
भोगों से सुख की कल्पना संसारमार्ग है ॥१॥  
प्रभु वीतरागी का अहो स्वाधीन नाम है।  
रागादि ही जिसके नहीं पर से क्या काम है ?  
मुनिराज हैं स्वाधीन बाह्य साधन के बिना,  
एकाकी जंगल में विचरते आकुलता बिना ॥  
देखो सुरक्षा का नहीं कुछ भी वहाँ साधन,  
फिर भी निर्भय रह कर करें शुद्धात्म आराधन ॥  
अस्त्रों शस्त्रों का संग्रह तो भय का ही मार्ग है ॥२॥  
धन के बिना निर्धन अरे अधीन सा दीखे,  
तृष्णा के वशवर्ती धनवान भी दुःखी दीखे।  
भोगों को पाने के लिए मूरख रहे रोता।  
पर भोगों को पाकर भी कौन तृप्त है होता ?  
ज्यों-ज्यों भोगे त्यों-त्यों तृष्णा ही बढ़ती है भाई।  
अग्नि की ईंधन से तृप्ति किसने है कर पाई ?  
निवृत्ति का ही मार्ग भवि स्वाधीन मार्ग है ॥३॥



गोरखधन्धे की इक कड़ी को हाथ लगावे,  
 फिर सुलझाना मुश्किल उलझता चक्र ही जावे ।  
 त्यों ही समस्यायें अनन्त जीवन है थोड़ा,  
 सुलझाने की आकुलता में जीवन होवे पूरा ॥  
 संक्लेश से मर कर अरे दुर्गति ही पाता है ।  
 सारा विकल्प उसका देखो व्यर्थ जाता है ॥  
 मुक्ति का मार्ग तो अरे अन्तर का मार्ग है ॥४ ॥  
 जैसे वाँसों के वृक्षों से छाया नहीं मिलती,  
 स्त्री-पुत्रादिक से सुख की त्यों कल्पना झूठी ।  
 कितने खोजे देखो भौतिक विज्ञान ने साधन ?  
 पर हो सके उनसे कभी क्या शान्ति का वेदन ?  
 बाहर की दुनिया में नहीं भवि होड़ लगाओ,  
 समझो चेतो आराधना के मार्ग में आओ ॥  
 जिनमार्ग ही कल्याण का सत्यार्थ मार्ग है ॥५ ॥  
 आत्मन् ! निराशा अन्त में बाहर से मिलेगी,  
 पछताने पर भी यह घड़ी नहीं हाथ लगेगी ॥  
 पुण्योदय भी क्षणभंगुर है मत लखकर ललचाओ ।  
 पापोदय की प्रतिकूलताओं से न घबराओ ॥  
 दुनिया की बातों में आकर नहीं चित्त भ्रमाना ।  
 नित तत्त्वों के अभ्यास में ही मन को लगाना ॥  
 नहीं है विवाद का अहो निर्णय का मार्ग है ॥६ ॥  
 है धैर्य ही अवलम्बन और धर्म सहायक ।  
 संयोग तो कोई नहीं विश्वास के लायक ॥  
 खुद ही विचारो सत् असत् का ज्ञान तुम करो ।  
 है सर्व समाधान कर्ता ज्ञान ही अहो ॥

भवरोग की औषधि अरे विवेक मात्र है ।  
 रे आत्मज्ञानी ही सहज मुक्ति का पात्र है ॥  
 जितेन्द्रियता का मार्ग ही मुक्ति का मार्ग है ७ ॥  
 पहले गये शिव जो उन्हें आदर्श बनाना ।  
 निश्चिंतता के नाम पर परिग्रह न जुटाना ॥  
 ध्रुवफण्ड नहिं ध्रुवदृष्टि ही आदेय तुम जानो ।  
 निर्वाछकता सम्यक्त्वी साधक का सुगुण मानो ॥  
 जीवराज का श्रद्धान-ज्ञान-आचरण करना ।  
 इस मार्ग से ही एक दिन भवसिन्धु हो तरना ।  
 रत्नत्रय मार्ग ही अहो परमार्थ मार्ग है ॥८ ॥  
 करके विराधन संयम का अति दुःख सहोगे ।  
 संयम का साधन करके ही आनन्द लहोगे ॥  
 आनन्द का अवसर मिला है चूक मत जाना ।  
 रे स्वप्न में भी भोगों का कुछ भाव नहीं लाना ॥  
 औदयिक भाव आ जावें तो प्रायश्चित्त करना ।  
 डरना नहीं पुरुषार्थ से आगे सदा बढ़ना ॥  
 निःशंकता से शोभित ध्रुव कल्याणमार्ग है ॥९ ॥  
 कोई सहारा है नहीं यों सोच मत लाना ।  
 चत्तारि शरणं पाठ पढ़ निज की शरण आना ॥  
 जिनभावना भाते हुए वैराग्य बढ़ाओ ।  
 सर्वत्र सुन्दर एक की ही भावना भाओ ॥  
 देखो अहो एकत्व ही है सत्य शिव सुन्दर ।  
 प्रभु पंच भी देखो अहो इक आत्म के अन्दर ॥  
 आत्मानुभव का मार्ग ही शिवपद का मार्ग है ॥१० ॥

**वह देशना (धर्मोपदेश) जयवंत वर्ते!**

जिसके अनुग्रह से प्रतिदिन अनेक श्रोता :-

1. धर्म को भली प्रकार जानते हैं।
2. संदेह को दूर करते हैं।
3. धर्मविषयक भ्रांति से बचते हैं।
4. श्रद्धा को दृढ़ करते हैं।
5. धर्म का पालन करते हैं।
6. पापबंध को रोकते हैं।
7. पूर्वोपार्जित कर्म की निर्जरा करते हुए आनंदित रहते रहते हैं।

— अनगार धर्माभूत

शुद्ध एवं प्रामाणिक पुस्तकों के प्रकाशन के लिए सम्पर्क करें —

मुद्रक :- संयम पब्लिशर्स एण्ड प्रिन्टर्स, आर्यनगर, भिण्ड(म.प्र.) 98262-87833, 099990-79733